प्रस्तावना ।

इस बीसवीं शताब्दीका रूप बडा ही विलक्षण है । इसमें लोगोंके विचार परिवर्तन अन्य विषयोंमें जो हो रहे हैं सो तो हो ही रहे हैं नवीन यंत्रोंके आविष्कारसे जो लोगोंकी आंखोंमें चकाचौंध लग रहा है वह तो लग ही रहा है पर साथ ही साथ जिस विषयमें भारतवर्षके आर्य संतानोंने सबसे बडा अनुभव प्राप्त किया था, जहांके लोगोंने जिस विषयकी खोज करनेमें अपना तन मन धन समस्त अर्पण करदिया था बल्कि यहांतक कि समस्त कौटुंबिक मोह छोड, ऐहिक सुखोंको तिलांजलि दे जंगलोंमें ही रहना पसंद किया था और पासमें धन धान्यादिकी तो क्या बात ? ध्यानमग्न होजानेके डरसे तनपर वस्त्र रखना भी अनुचित समझा था उन्हीं आत्मधर्मकी खोज करनेवाले आर्योंके प्रसिद्ध निर्णीत धार्मिक विषयोंपर भी विचित्र रीतिका प्रकाश पड रहा है जिससे उसका असलीरूप जो छिपता जा रहा है वह तो जा ही रहा है पर साथ ही भ्रांतिवश लोग उसे अन्यथा सिद्ध करनेपर भी उतारू हो रहे हैं । जिन धार्मिक ग्रंथोंका पठन पाठन बडी भक्ति और श्रद्धाके साथ लोग करते थे उनहींके विषयमें विपरीत विचार होने लगे हैं । बहुतसे कहते हैं कि जो कुछ आचार्योंने कहा है वा वे लिखकर हमारे लिये छोड गये हैं वह अभी अपूर्ण है अर्थात् सिद्धांत नही है वे उस (धर्म) की खोज कर रहे थे पर कर नहीं पाये । बहुतसे कहते हैं कि जो कुछ लिखा हुआ आचार्योंके नामसे मिलता है वह आचार्योंका नहीं, आचार्य नामधारी ढोगियोंका है संसारके भोलेभाले प्राणियोंको ठगनाही उनका भीतरी उद्देश्य था, उन्होंने तत्त्वका प्रकाश न कर

मिथ्यात्वको वढाया है और इसीलिये कुछ लोग पुरातन ग्रंथोंका मनमाना अर्थ लगा निरंकुश हो खंडन भी प्रकाशित करने लगे हैं। जिन ग्रंथोंका आजकल लोग खंडन कर रहे हैं, वे अधिकतर पौराणिक हैं और उनके खंडनके वहाने ही अपना भीतरी जहर उगलकर समाजके असली सूक्ष्मतत्त्व नष्ट करनेकी चेष्टाकर रहे हैं अस्तु, जो कुछ भी हो इस विषयमें हम यहां विशेष नहीं लिखना चाहते।

हमारा अनूदित ग्रंथ भी पौराणिक है, पुराणसे तात्पर्य तिरेसठ शलाका पुरुषोंके जीवन चरितसे नहीं, पुरातन पुरुष जिनदत्तके जीवन चरितसे है जो कि एक वैश्य था और अपने जीवनमें दुःख सुख भोगकर इतना बडा अनुभवी तथा मनुष्यके पुरुषार्थोंको यथाशक्ति पालकर सुखी हुआ था।

पद्धति।

हमारे पुरातन आदर्श पुरुषोंकी जींवनी जो हमारे इतिहासवेत्ता वीतरागी मुनि लिखगये हैं वह यद्यपि आजकलके ढंगसे सन् संवतसे मिश्रित नहीं है तथापि उसमें सत्यकी वहुत कुछ आभा पाई जाती है, उसमें उससमयके राजाओंका उल्लेख मिलता है, मिती भी लिखी है पर अधिक समय व्यतीत होनेसे जो सन् संवत्का उल्लेख नहीं किया गया इतनेमात्रसे उसमें अप्रमाणिकता आनेका कोई जोरदार कारण नहीं मालूम होता वल्कि आजकलके जो इतिहासवेत्ता हैं वे विशेष रागी द्वेषी पक्षपातग्रस्त होनेसे पहिलेके इतिहासज्ञोंकी कोटिमें नहीं बैठ सक्ते। पहिलेके जो ऋषि थे उनका तात्पर्य घर द्वार छोड सब प्रकारसे निराकुल हो वस्तकका त्यागकर जंगलमें रहनेका यह नहीं था

कि हम झूठी साची अट्टसट्ट कथायें गढें और उनसे संसारके प्राणियोंको ठगें। यदि उनका ऐसा ही (ठगनेका) उद्देश्य होता तो वे कदापि अपने ग्रंथोंमें इस निपक्षपाततापूर्ण कसौटीका उल्लखन न करते कि—

आप्तोपज्ञमनुल्लंघ्यमदृष्टेष्टविरोधकं।
तत्वोपदेशकृत्सार्वं शास्त्रं कापथघट्टनं॥ ८॥

अर्थात् जो वाक्य वा वाक्योंका समुदाय सर्वज्ञ वीतरागी के कथनानुसार है, विवादियोंमे जिसका खंडन नहीं हो सक्ता, जिसमें वर्णित पदार्थोंका भूत भविष्यत् वर्तमान कालमें हुये होनेवाले और होते हुये पदार्थोंसे विरोध नहीं आता, और जो जीव अजीव आदि संसारस्थ समस्त तत्त्वोंका उपदेष्टा होकर प्राणीमात्रका हित प्रतिपादन करनेवाला है वह वास्तवमें शास्त्र है ऐसे ही शास्त्रसे कुमार्गका नाश होता है।

यह शास्त्रका निर्दोष लक्षण जो माननेवाले हैं वा जिन्होंने इस सर्वव्यापी चैलेंजके द्वारा अपने अभीष्ट शास्त्रका लक्षण कहा है वे अपने ही शास्त्रोंमें अट्टसट्ट गपोडे मिलालेंगे वा जान बूझ कर भोले भाले जीवोंको ठगनेके अभिप्रायसे वाहिरके कूडेको मिला उसे अपना बतलावेंगे यह कभी संभव नहीं हो सक्ता। इसलिये जो हमारे आचार्योंने लिखा है उसे जो मिथ्या सिद्ध करनेकी चेष्टा करते हैं वह व्यर्थ है और अज्ञानियोंको भ्रममें डालनेवाली है। हां! यह बात दूसरी है कि जिस पद्धति-लेखन प्रणालीसे आजकलके लोग लिखते हैं उस प्रणालीसे पहिलेके ग्रंथ नहीं लिखे गये हैं। उनमें संस्कृत साहित्यके नियमानुसार

अलंकार, गुण, रीति, नायक, नायिकाके भेदोपभेद आदि बा-तोंका सविस्तर वर्णन है जो कि उस जमानेकी लेखन पद्धतिसे बुरा नहीं कहा जाता था और न कोई अब सहृदय पुरुष ही बुरा कह सक्ता है। लेखन प्रणालीमें अंतर होनेसे उससमयकी बातें मिथ्या होगई वा उस पद्धतिका आश्रयकर इतिहास लिखनेवाला ही झूठा होगा इस कथनको कौन बुद्धिमान कहने वा मान-नेके लिये तयार होगा।

हमारे इस ग्रंथकी रचनापद्धति भी पुराने ढंगकी है क्यों-कि इसके प्रतिपादक आचार्य पुरातन थे इसलिये यह अप्रमाण है वा इसमें लिखी गई बातें असत्य हैं यह कहनेका चाहें कोई पांडित्याभिमानी साहस करे तो करे पर हमारी वा हमारे सरीखे अन्य अल्पज्ञोंकी बुद्धि तो इसे कभी स्वीकार नहीं कर सक्ती।

शिक्षा प्राप्ति।

पुरातन इतिहासको प्रमाण न माननेवाले लोगोंका एक यह भी कहना है कि पुराण कथाओंसे कोई अच्छी शिक्षा नहीं मि-लती सिर्फ मनोरंजन वा समय ही कटता है ऐसे लोगोंसे कहना है कि जिसका जैसा स्वभाव होता है वा रुचि होती हैं वह वही बात अन्यपदार्थोंसे ग्रहण करता है। जैन सिद्धांतका यह सर्व मतोंसे विलक्षणपर मान्य सिद्धांत है कि हर एक पदार्थ नानागु-णोंका समुदाय है। जिस समय जिसकी जैसी रुचि होती है उ-सको वही गुण चाहें जिस पदार्थमें दीखने लगता है। जैसे मृत युवतिके शरीरमें कामीको कामपुष्टिका और विरागीको वैराग्य पुष्टिका यथेष्ट साधन दीखने लगता है। यही बात है जो

किन्हीं लोगोंको पौराणिक ग्रंथोंमें शिक्षाका अभाव अथवा दुःशि-क्षाकी गंध आरही है और किन्हीकों नहीं। अर्थात् आत्महित करनके इच्छुक ऋजुपरिणामी हैं उन्हे तो उससे सुशिक्षाही मिलती है। कौन कहसकता है कि रावणके मुखसे सीताके रूपका वर्णन सुननेसे कामकी उत्पत्ति होती है? और जब कामपोषक सीताके रूपका वर्णन कामकी जगह क्रोध तथा रावणके प्रति घृणा उत्पन्न करा देता है तो क्यों नहीं एक पदार्थसे ही अपनी अपनी भली वा बुरी रुचिके अनुसार भली वा बुरी शिक्षा गृहीत होसकती। अपने स्वभावसे सत्को असत् वा असत्को सत् समझना समझनेवालेकी गलती है न कि उस पदार्थ तथा वर्णनकी। इसलिये जो पौराणिक ग्रंथोंसे शिक्षा प्राप्त नहीं होती यह कहते हैं उनके वचन प्रमाण है या नहीं, यह विचार हम अपने पाठकोंके ऊपर ही छोडते हैं।

हमारे इस जिनदत्तचरितसे क्या शिक्षा मिलती है या मिलसक्ती है यह कहनेका अवसर हम यहां नहीं समझते क्योंकि इसके प्रारंभसे अंततक स्वाध्याय कर जानेसे जो हृदय पटल पर असर पडेगा वह स्वयं पाठकोंको विदित हो जायगा उसको लिखकर कागद काला करनेके सिवा अन्य कुछ फल नहीं है।

विशेप वक्तव्य।

समाज वा उसके सुधारकोंके प्रति हमारा सानुरोध पर सविनय निवेदन है कि वे किसी भी सामाजिक प्रथाको तबतक प-

१ सत्यवादी मासिक पत्रके छठे भागके २-३ अंकमे "गुणभद्राचार्य और समाज सुधार" इस नामके लेखमे हमने अपना मत प्रकाशित किया है उसे देखो। अनुवादक

रिवर्तन करनेकी मनमें न विचारें और न कोशिश ही करें ज-
बतक कि वह सर्वथा हानिकर सिद्ध होनेके साथ साथ शास्त्रवि-
रुद्ध न सिद्ध हो। दृष्टांतकेलिये विधवाविवाह आदि अनेक
बातें ऐसी बतलाई जासक्ती हैं जो वास्तवमें शास्त्रविरुद्ध तो हैं
हीं, पर उनके प्रचलनसे महती हानि भी हो सक्ती है वा हो
रही है लेकिन हमारे उत्साही नवीन सुधारक उन सब बातोंका
अनुभव न होनेसे अपनेको सर्वज्ञकी कोटिमें गिन वैसा नहीं
करते, विरुद्ध बातोंके प्रचारसे ही अपनी तथा समाजकी भला-
ईका स्वप्न देखते हैं इसलिये उन्हें सचेतकर कहते हैं कि वे
इस ग्रंथको ध्यानपूर्वक पढें और मनन करें, फिर देखें कि उ-
नका आदर्श क्या सिद्ध होता है ?

अंतिम निवेदन।

इस ग्रंथका हमने शब्दतः अनुवाद नहीं किया है तो भी
आचार्यके कथनसे विरुद्ध कहीं लिख दिया है ऐसा भी नहीं है
हां! बुद्धिके भ्रमसे किसी श्लोकका तात्पर्य कुछका कुछ ही यदि
हम समझ गये हों तो उसकेलिये विज्ञ निष्पक्ष विद्वानोंसे प्रा-
र्थना करते हैं कि सिर्फ सुधार ही न लें बल्कि हमें भी सूचना
देदें जिससे आगामी संस्करणमें वह शुद्ध हो जाय।

अहमदाबादनिवासी डाक्टर माधवलाल गिरधरलालजी संघ-
वीको अनेक धन्यवाद देते हैं जिनकी प्रेरणासे 'धी विजय वी-
विंगवर्क्स' अहमदाबादने ३००) रु० की सहायता इस ग्रंथके
उद्धार करनेमें दी। निवेदक-

श्रीलाल जैन।

चुन्नीलालजैनग्रंथमाला ।

१

भाषा

जिनदत्तचरित्र

मंगलाचरण

और प्रस्तावना

यह संसार नाना दुखोंका स्थान एक कारागार स्वरूप है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अंतराय, वेदनीय, आयु, नाम, और गोत्र नामके आठ दुष्टपुरुष इसके अधिकारी हैं और इनका स्वभाव बडा ही क्रूर है इसलिये यों तो ये समस्त ही इस कारागारमें रहनेवाले प्राणियोंको दुःख दिया करते और उनसे मनमाना कठिनसे कठिन काम लिया करते हैं प-रंतु उन सबमें मोहनीय बडा ही क्रूर है। यदि उसे दुष्टोंका सरपंच कहा जाय तो कोई भी अयुक्ति न होगी क्योंकि जि-तने भी दुःख वा सुखाभास सुख इस संसाररूपी कारागारमें रहनेवालोंको मिलते हैं वे सब इसहीकी सहायता वा आज्ञासे

इसके साथियों द्वारा दिये जाते हैं। वैसे तो इसमें रहनेवाले समस्त प्राणियोंको ही इसकी आज्ञाका पालन करना होता है और प्राय: करते ही हैं परंतु जो कोई भी लाखों और किरोडोंमेंसे एक कदाचित् दृढतासे, किसीके कहने सुननेसे इसकी आज्ञाका पालन न करै तो उससे यह क्रुद्ध होजाता है और नाना उपायोंसे उसे अपने वशमें चलानेका प्रयत्न करता है। यद्यपि उसका यह प्रयत्न विफल नहीं जाता तो भी यदि कदाचित् कभी व्यर्थ चला जाता है तो इसे बड़ा ही क्रोध आता है और फिर ऐसा कडा प्रबंध उस कारागारका कर देता है कि लोगोंको आपसमें उसके विरुद्ध कहने सुननेका कभी अवसर ही नहीं प्राप्त होता। परंतु इतना कडा प्रबंध रहनेपर भी जो लोग इसके विरुद्ध हो आनेसे कारागारसे निकल चुके हैं और अपने सतत सुखदायी नगरकी ओर प्रस्थान करनेकी तयारियां कर रहें हैं वे उस कारागारके कैदियोंको उनके अनुभूत दुःख सुना सुनाकर चेतावनी देते हैं और अपने सरीखा दृढप्रतिज्ञ बननेकेलिये उपदेश देते हैं जिससे कि बहुतसे कैदी तो उनकी उन अपवीती दुखभरी कहानियोंको और वहांसे निकलनेके मार्गको सुनकर उन सरीखे हो जानेकेलिये कटिबद्ध हो जाते हैं। बहुतसे वहांसे निकलनेके इच्छुक होनेपर भी डांट डपटसे जैसेके तैसेही चुपकी साध रहजाते हैं और बहुतसे उस मोहनीयकी गाढ भक्तिमें आकर उनकी कुछ सुनते ही नहीं हैं। इसतरह संसाररूपी कारागारके प्रधान अध्यक्ष मोहनीयके विरुद्ध लडनेवाले और युद्धमें जय प्राप्तकर उसके अत्याचारोंको लोगोंमें प्रकट करनेवाले लोग समय समयपर

हुआ करते हैं। उनमेंसे जो इस युगमें-हुंडावसर्पिणी कालमें हुये हैं वे आदिनाथ आदि चौवीस हैं और जो इन चौवीसोंके उपदेशसे मोहनीयको परास्त करनेवाले हैं वे असंख्य और अनंत हुए हैं। इसलिये जिन्होंने इस संसाररूपी कारागारमें सर्वदा व्यथित होते हुये प्राणियोंको उसके दुःखोंसे निवृत्त होनेका सीधा सच्चा मार्ग बतलाया और जो स्वयं अनंत सुखके भाजन बनगये वे हम लोगोंका कल्याण करें उनसे प्रार्थना है कि हम लोगोंको भी दुष्ट मोहनीयसे युद्ध कर उसे परास्त करनेकी शक्ति प्रदान करें।

देवि! सरस्वति! यदि तू न होती तो इस संसाररूपी कारागारमें अवरुद्ध हुये दीन दुखिया प्राणियोंका जिनेंद्र भगवान् कैसे उद्धार करते उन्हें किसतरह सुखका मार्ग बतला मोक्षनगर पहुंचाते और क्यों ही वे हमारे उपकृत-उपकारी ही होते। जो कुछ भी उनके प्रति हमारी भक्ति वा श्रद्धा है सब तेरे ही द्वारा कराई गई है। तू ही इसमें प्रधान कारण है। संसारके समस्त पदार्थोंका ज्ञान तेरे ही कारणसे होता है इसलिये हे संसारके प्राणियोंकी एकमात्र रक्षित्री जगद्धात्री जिनेंद्रभगवान्के वदनरूपी कमलपर अतिशय शोभित होनेवाली दिव्यध्वनिरूपी राजहंसी पूज्य मा! तेरेलिये हमारा वार वार नमस्कार है।

मुनियोंके शिरताज, अहिंसा आदि पांच महाव्रतोंके निर्दोष पालक, सदसद्विवेकी गुरुदेव! आपकेलिये भी हमारा भक्तिभरा नमस्कार है यदि आप जिनेंद्रभगवान्के उपदेशोंसे अपनी आत्माको उन्नतकर मोहनीयके साथ युद्ध न करते और उ-

सकी ही आज्ञाका पालन करते रहते तो ऐसा कभी भी अवसर प्राप्त न होता कि हम भी उस मोहनीयके विरुद्ध कुछ भी आंख उठाकर देख सक्ते। यह सब आपहीका प्रसाद है कि मोहनीय कर्म द्वारा भेजे गये मिथ्यात्वरूपी सर्पसे डसेगये भी इस संसारके भव्य जीव आपके सद्धर्मोपदेशरूपी अमृतका पानकर जी रहे हैं-मूर्छित वा मृत्युको न प्राप्तकर अपने अभीष्ट (स्वस्वरूप) की सिद्धि कर रहे हैं अन्यथा अनंत सुखस्वरूप मोक्षकी प्राप्ति इस संसारके जीवोंको दुर्लभ ही नहीं असंभव भी हो जाती--वे इसे कभी न प्राप्त कर सक्ते।

कवि लोग प्रायः अपने अपने रचित ग्रंथोंकी आदिमें दुर्जनोंकी निंदा और सज्जनोंकी प्रशंसा किया करते हैं एवं उनसे अपने काव्यके दोषोंकी मार्जनाका विचार भी प्रगट करते हैं परंतु उनके उस लंबे चौडे प्रशंसा वा निंदाके प्रस्तावसे सज्जन वा दुर्जन कोई भी सहमत नहीं होते। वे लोग जो उनके मनमें आती है अपने स्वभावानुसार दोषाच्छादन वा दोषोद्घाटन गुणप्रकाशन वा गुणाच्छादन आदि किये विना नहीं रहते। इसलिये हम (गुणभद्रस्वामी) अपने इसग्रंथमें व्यर्थ ही सज्जनप्रशंसा और दुर्जननिंदाका लोकानुगत गीत गाकर समय और शक्ति नष्ट नहीं करना चाहते। हमें केवल इतना ही कहना है कि जिनदत्त सेठकी कथा मनुष्यके जीवनके कर्तव्यस्वरूप धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंके प्रगट करनेवाली है। जो लोग अपने जीवनको सदाचारी पवित्र इहलोक परलोकमें सुखप्रदान करनेवाला बनाना चाहते हैं उनकेलिये अतुलनीय यह सत्य

दृष्टांत है इसलिये हमारी इच्छा हुई है कि ऐसे उत्तम पुरुषका जीवन लोगोंको बतलाया जाय अतः उसे हम यहां लिखते है।

प्रथम सर्ग।

इस मध्य लोकमें असंख्याते द्वीप हैं उन सबके बीचोंबीच पृथ्वी जातिके जंबू [जामुन] वृक्षसे शोभित यह जंबूद्वीप नामका द्वीप है। इसके मध्यमें अनेक क्षेत्र हैं। उनमें भरतक्षेत्रका नाम उल्लेखके योग्य है। क्योंकि हमें उसीके एक देशवासी व्यक्तिका जीवन वृत्तांत यहां कहना है। भरतक्षेत्रके दक्षिण भागमें एक अंग नामका देश है। यह देश सांसारिक समस्त भोग उपभोगोंकी सामग्रीके लिये सर्वत्र ख्यात है। इसके अधिवासी लोग कभी किसी प्रकारके भोग्य पदार्थकी लालसासे ग्रस्त नहीं होते। जब जिसप्रकारकी आवश्यकता होती है उसे वहींसे पूरी कर लिया करते हैं। बाग बगीचोंकी यहां कमी नहीं है। उनमें जा जाकर लोग मनमानी क्रीडा किया करते हैं। नदियोंका यहां खूब ही जोर शोर है कमलोंके समूहके समूह उनमें खिले हुये दिखलाई पडते हैं, भंवर कूपसरीखे गहरे हो हो कर लोगोंके मनमें डर और कौतूहल पैदा करते है। जल उनका ऐसा स्वच्छ और मधुर है कि पीते ही बनता है उसके पानसे कभी भी तृप्ति नहि होती। स्त्रियां वहांकी बहुत ही सुंदर हैं। उनके उस सौंदर्यका वर्णन करना असंभव नहीं तो दुर्लभ अवश्य है। उच्च वर्णोंकी नारियोंकी तो बातही

क्या है ? सामान्य शूद्र ग्वालोंकी कन्यायें जो धूपकी उष्णता-में, जाडेकी सरसराहटमें सर्वदा कुम्हलाई रहती हैं उनके अप्रतिमरूपको देखकर ही पथिक लोगोंको आश्चर्यसागरमें डूबजाना पडता है और जो अपना शीघ्रतासे मार्ग तय करना चाहिये था उसे भूलकर बहुत विलंबसे तय कर पाते है। वहां खाद्य पदार्थोंका बहुत ही आधिक्य है। आप जिधर ही चले जाइये उधर ही गांवोंमें अनाजके ढेरके ढेर पावेंगे कहीं आप जौ को देखेंगे तो कहीं गेहूंको, और कहीं कोई अन्य ही अनाज दृष्टिगोचर होगा। अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं है केवल इसीसे उसकी धान्य संपत्तिका ज्ञान हो सक्ता है कि सर्वदा खलियानोंमें धान्योंकी रखवालीके लिये समीप बैठे हुये किसानोंको देखनेसे गांवोंकी सीमाका यथेष्ट ज्ञान नहीं हो पाता [सर्वत्र मनुष्योंके झुण्डके झुण्ड दीख पड़नेसे 'यह ग्राम निकल गया' अब यह गांव आया है' अथवा 'ये इस गांवके मनुष्य हैं' और 'ये इस गांवके हैं' यह जरा भी नहीं मालूम पड़ता] उस जगहके वृक्षोंकी शोभा ही अपूर्व है। उनकी वह ऊंचाई और वह छायाकी बहुलता चित्तपर एक दूसरे प्रकारका ही भाव अंकित करदेती है और उनकी सघन वीथियोंमें कोमल कोमल मधुरवाणी बोलनेवाले पक्षी बड़े ही सुहावने मालूम पड़ते हैं। लोकव्यवहारके लिये पृथ्वी का दूसरा नाम वसुमती [धनवाली] भी है परंतु जब हम वहांकी सोने चांदी पैदाकरनेवाली खानियोंकी तरफ दृष्टि डालते हैं तो उस जगहकेलिये वह शब्द केवल व्यवहारके लिये ही नहीं किंतु वास्तविक अर्थको बतलानेके लिये भी

उपयुक्त मालूम होता है। वहांकी पृथ्वी केवल नामसे नहीं बल्कि अर्थसे भी वसुमती [धनसमृद्ध] है। जिस समयका हम यह वर्णन कर रहे हैं उससमय जैन धर्मका यहां बड़ाही प्रभाव था। जैनधर्म राष्ट्रधर्म कहकर उससमय परिचित होता था। लोग अपने दुष्कृत्योंके फलस्वरूप दुःखोंसे जब घबड़ा जाते थे और शांति सुखकी तलाश करते थे तो इसी धर्ममें आकर अपनी रक्षा करते थे। वहां जगह जगह जिनेंद्र भगवानके पंचकल्याणोंके बहुमूल्य मंदिर थे और हर समय नानाप्रकारके उन्होंमें धार्मिक उत्सव हुआ करते थे जिन्हें देखनेकेलिये देव और दूर दूरके लोग आया करते थे एवं अपने पापोंका नाशकर पुण्य लाभ किया करते थे। इसदेशमें प्रायः सर्वदा ही पुण्यात्मा और धर्मात्मा जीव उत्पन्न हुआ करते थे और यहां तक तीन जगत्को जीतनेवाले कामके भी विजयी जिनेंद्र भगवानोंके गर्भ जन्म तप आदि पांचो कल्याण भी यहां हुए थे।

इसप्रकार अपने अधिवासियोंको इहलोक और परलोकमें सुख प्रदान करनेवाली सामिग्रीके धारक इसी अंग [विहार] देशमें वसंतपुर नामका एक नगर था और यही उस [अंग] देशकी उससमय राजधानी था। राजधानी होनेके कारण इसका ऐश्वर्य और सौंदर्य उससमय स्वर्गके ऐश्वर्य और सौंदर्यसे भी चढ़ बढ़कर लोगोंको मालूम होता था। इसके चारो ओर बहुत ही गहरी एक खाई थी और उसको देखकर लोग कभी कभी यह अनुमान लगाया करते थे कि इस नगरमें रत्न अधिक हैं इसलिये उनको चुरानेकेलिये खाईका रूप धारण

कर समुद्र पृथ्वीमें घुसकर अपनी अभीष्ट सिद्धि करना चाहता है। इस खाईके वाद एक कोट था और उसके वाद फिर नगर निवासियोंके महल मकानात थे। इसलिये उसमें रहने वालोंको किसीप्रकारकी कभी हानि न उठानी पडती थी वे दृढरीतिसे सुरक्षित होते थे। यहां धनिकोंके महल और अट्टालिकायें वडी वडी ऊंची थी। उनकी ऊंचाईसे चंद्रमंडल थोडी दूर रह जाता था और उससे वहांकी रमणीय रमणियोंके मनोहर कपोलोंकी कांतिको हरणकर अपने कांतिविहीन कलंकको मार्जन करनेकी इच्छावाला वह मालूम होता था। पुरुषोंके विषयमें भी वह नगर किसी तरह दोषी नहीं कहा जा सक्ता। वहांके लोग एक दूसरेकी संपत्तिको देख सर्वदा प्रसन्न होते थे। व्यापार आदि कार्योंमें सत्य वचनोंसे ही काम लिया करते थे और पात्रमें अपनी विभूतिका दान देकर संतोषके साथ इंद्रियभोग भोगते थे। जिसप्रकार अन्यत्र इस देशमें जगह जगह धर्मके साधनभूत जिनमंदिर प्रतिष्ठित थे। उसीप्रकार इस नगरमें भी नाना चित्र विचित्र कूटों शिखरोंसे अलंकृत विस्तीर्ण और उच्च उच्च अनेक जिनमंदिर विराजमान थे

इस नगरका रक्षक क्षत्रियवंशी राजा चंद्रशेखर था। यह बडा ही सुंदर और सुडौलडौलका था। इसके प्रतापकी महिमा दशो दिशाओंमें उससमय विस्तृत हो गई थी इसलिये इसके भयसे लोग दूर गुहा झाडी और जंगलोंमें जा छिपते थे। यह जिसप्रकार अपने इंद्रियसुखोंको भोगता था उसीप्रकार वल्कि उससे भी कहीं अधिक धर्मके पालनमें चित्त लगाता था। इसके मनमें सर्वदा 'धर्मसे ही सुखकी प्राप्ति होती

है' इस बातका ध्यान बना रहता था और तदनुसार पाप-मार्गसे भीत हो धार्मिक क्रियायोंको निरतिचार पालनेकी पूर्ण कोशिश भी किया करता था। यह अपनी राजकीय विद्यायोंका भी पूर्ण जानकार था। इसकी बुद्धि जिसप्रकार सूर्य अपने उदयसे दिशायोंको प्रकाशित करता है उसीप्रकार समस्त विद्यायोंको प्रकाशित करती थी। इसमें नम्रता भी खूब थी। इसे अपने चरणोंमें नमते हुये सामंतोंको देखकर उतनी खुशी न होती थी जितनी कि जगत्के एक हितू सच्चे साधुओंके चरणोंमें नमते हुये अपनेको देखकर आनंद होता था।

इसप्रकार राजाओंके योग्य नाना गुणोंसे भूषित राजा चंद्रशेखरके मदनसुंदरी नामकी पटरानी थी। यह समस्त संसारकी स्त्रियोंमें अनुपम सुंदरी और बुद्धिमती थी। इसके उपमातीत सौंदर्यको देखकर कल्पनाचतुर कविगण तो यहां तक अनुमान लगाते थे कि देवांगनायें जो निमेषरहित नेत्रवाली हैं वे इसीके रूपको देखकर आश्चर्यसे आंखे फाडे ही रह जानेके कारण हैं। अपने पतिके समान यह रानी भी अप्रतिहतरूपसे धर्मका पालन और इंद्रियसुखका भोग करती थी। इसके हृदयमें [वक्षस्थलमें] जिसप्रकार निर्मल बहुमूल्य मोतियोंका गुंफित हार शोभित होता था और उसका पहिरना वह उचित समझती थी उसीप्रकार इसके चित्तमें मुक्त-स्वस्वरूपमें स्थित आत्माओंके ध्यानसे निर्मल गुणोंसे विशिष्ट सम्यग्दर्शन भी शोभित होता था और उसका धारण करना भी वह उचित ही समझती थी।

इसप्रकार सद्धर्मके सेवक इन राजा रानियोंकी राजधानीमें जीवदेव नामका एक शेठ रहता था। यह बडा ही जिनधर्मका भक्त और उसका गाढ श्रद्धानी था। इसके असंख्य धनराशि थी। उससमय इसकी धनमें बराबरी करनेवाले बहुत ही कम दुनियामें लोग थे। धनाढ्यताके साथ साथ इसमें एक और गुण यह था कि यह कंजूस न था। घर पर आये हुये श्रेष्ठ अतिथियोंकी तो न्यारी बात है इसके द्वारपर जो लोग दीन दुखिया दरिद्री आया करते थे उनकेलिये भी इसका द्वार सर्वथा खुला ही रहता था। यह लोगोंको मुंहमागा दान दिया करता था। इसलिये इसकी बराबरी इस गुणमें कोई भी उस नगरका धनाढ्य न कर सक्ता था। इसने जो कुछ भी धन उपार्जन किया था वह न्यायपूर्वक सत्य वचन बोलकर किया था। इसको मिथ्या बातोंसे बहुत ही चिढ थी। जो लोग मिथ्या वचन बोल बोलकर अनेक भावतावोंसे लोगोंको फुसलाकर व्यापार करते थे उनको यह बडी ही घृणाकी दृष्टिसे देखा करता था। सदाचारमें भी इसकी सानीका कोई न था। अहिंसा आदि पांचों अणुव्रतोंका निरतीचार पालक होनेसे सज्जन लोग इसकी भूरि भूरि प्रशंसा किया करते थे। पूर्व पुण्यसे उपार्जित अपने द्रव्यको इसने अनेक जगह बहुमूल्य जिनमंदिरोंके निर्माणोंसे सफल किया था और वे उसके शरीरधारी यश सरीखे मालूम पडते थे। इसके माता पिता दोनों पक्षोंसे शुद्ध वैवाहिक विधिसे परिणीत जीवंजसा नामकी पत्नी थी। यह बडी ही साध्वी और पतिव्रता स्त्री थी। ऐसी गुणकी खानि स्त्री हरएकके भाग्यमें नहीं होती। इसने

अपने अनेक सुगृहिणियोंके उचित गुणोंसे सेठ जीवदेवके मनको मोहित करलिया था। इसके विनयशील और गृहस्थीके उचित कार्योंमें निपुण होनेसे सेठ जीवदेव सवप्रकारसे सुखी थे। जिसप्रकार ये निर्विघ्नरीतिसे श्रेष्ठ धर्मका पालन करते थे उसीप्रकार धनका भी खूब ही उपार्जन किया करते थे। बहुत कहनेसे क्या? इससमय इन दोनों दंपतियोंको सवप्रकार का सांसारिक सुख उपस्थित था। किसी भी ऐहिक पदार्थकेलिये इन्हें कभी याचना न करनी पडती थी।

एक दिनकी वात है कि सेठानी जीवंजसा स्नान आदिसे शुद्ध होकर नवीन वस्त्राभूपणोंसे अलंकृत हो अपने दास दासियोंके साथ खूब सवेरे ही जिनमंदिरमें भगवान् जिनेंद्रके दर्शनकेलिये गई। वहां पहुंचकर पहिले तो उसने जिनदेवकी तीन प्रदिक्षणा दीं और उसके वाद स्तुतिपूर्वक भगवान्‌का विंवाभिषेक तथा पूजन किया। जव नित्य नैमित्तिक समस्त पूजनोंसे वह निवृत्त होगई तो मुनियोंकी सभामें गई और धर्म सुननेकी इच्छासे वह वहां नमस्कार पूर्वक बैठ गई। जिससमय यह जीवंजसा मुनियोंकी सभामें गई थी तो उससमय श्रेष्ठ धर्मके उपदेशक, भूत भविष्यत् वर्तमान कालके समस्तरूपी पदार्थोंको जाननेवाले अवधिज्ञानसे भूषित मुनिवर गुणचंद्र पुरातन इतिहासकी एक घटना भव्य श्रावकोंको सुनारहे थे और उसमें प्रसंगवश पुत्रजन्मसे स्त्रियोंकी प्रशंसा वा पुत्रके न होनेसे उनकी निंदाका प्रभावशाली वर्णन कर रहे थे। मुनिराजके इस ओजस्वी व्याख्यानको श्रवणकर जीवंजसाके हृदयमें गहरी चोट लगी। उसके अभीतक कोई पुत्र

न हुआ था इसलिये वह मुनिवरका व्याख्यान और वह उसमें बतलाई गई पुत्रकी आवश्यकता उसके हृदयमें लोहकी कीलके समान पीडा देने लगी। वह वार वार अपने इस अशुभ कर्मको धिक्कारने लगी और इसतरह सोचने लगी—

"हाय! मुझ अभागिनीके समान दुःखिया और धिक्कार पानेके योग्य इससंसारमें कोई नहीं है। मैं बडी ही मंदभागिनी और पापिनी हूं। न जाने पूर्वभवमें मैंने ऐसा कौनसा पाप किया था जिसके कारण मुझे यह दुःख उठाना पड़ा है। मेरा यह मनके हरण करनेवाला यौवन किसी कामका नहीं है। ऐसे केवल नामधारी अशोक वृक्षसे मतलब ही क्या निकलता है जिसपर पुष्प तो लगते हैं परंतु फलका नाम नहीं आता। उससे तो यही अच्छा है कि उसका इस दुनियामें नाम और निशान तक न हो। हाय! समुद्रके जलके समान खारी मेरे इस लावण्य गुणको भी शतशः धिक्कार है जिसके कारण इसमें पुत्ररूपी कमलोंका आविर्भाव ही नहीं होता। अरे! मैं नाम मात्रकी स्त्री हूं। वास्तवमें स्त्री शब्दसे पुकारे जानेकी मुझमें योग्यता ही नहीं है। शब्दशास्त्रके वेत्ता गर्भसे पुत्रकी उत्पादिका नारीको स्त्री कहते हैं। परंतु मैं अपनी तरफ जब दृष्टि डालती हूं तो इस अर्थकी अपनेमें गंध भी नहीं पाती हूं इसलिये जिसप्रकार वर्षाकालकी लाल जंगलकी कीडीको लोग इंद्रवधूटिका कहकर पुकारते हैं जिसका कि अर्थ इंद्रकी सहचारिणी शची होता है परंतु उस विचारीमें शचीके योग्य एक भी ऐश्वर्य नहीं होता लोगोंने केवल उसकी रूढि संज्ञा करली है उसीप्रकार मुझे भी लोग लोक-

व्यवहारके लिये स्त्री स्त्री कहते हैं परंतु वास्तवमें उसकी मुझमें कोई भी योग्यता नही है । पुत्रकी उत्पत्तिसे स्त्रीका जन्म सफल होता है। उसके होनेसे ही परिवारके लोग सासु ससुर आदि सब उसका सत्कार करते हैं और उसके अभावमें अन्यकी तो बात ही क्या है उसका खास आधा अंगस्वरूप पति तक भी उससे रुष्ट होजाता है-वह भी उसकी कुछ बात नहीं पूछता। जिसप्रकार विना व्याकरणके जाने किसी भी भाषाका विद्वान लोगोंकी दृष्टिमें श्रेष्ठ विद्वान वा आदरणीय नहीं समझा जाता उसीप्रकार कैसी भी सुंदर स्त्री विना पुत्रकी उत्पत्तिके श्रेष्ठ और आदरणीय नहीं समझी जाती। मैं एक पुत्ररूपी दीपकके न होनेसे अंधकारसे आच्छन्न, उद्वेगके करनेवाली रात्रिके समान मोहसे मुग्ध, कुटुम्बी लोगोंको उद्वेगके करनेवाली हूं। हाय! यदि मेरे अवतक कोई पुत्र हो जाता तो आज ऐसे दुःखकी भाजन होनेका मुझे क्यों ही दुर्भाग्य प्राप्त होता।"

सेठानी जीवंजसा पुत्रके न होनेसे इस तरह अपने मनमें नाना तरहके संकल्प विकल्प करही रही थी और अपने एक हाथकी हथेलीपर कपोल रक्खे गर्म गर्म श्वांस छोड़ ही रही थी कि उसके उस उदासीनताभरे मुखपर सभाके लोगोंकी एका एक दृष्टि जा पड़ी। बस! सभासदोंका देखना था कि जिसप्रकार वर्षाऋतुकी मेघवर्षाके कारण तालाबोंका बंध टूट जाता है उसीप्रकार उसके हृदय सरोवरका बांध टूट गया उसके नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारा बह चली और पड़ापड़ आंसू पृथ्वीपर गिरने लगे। सेठानीकी ऐसी शोकभरी हालत देख स-

भाके समस्त सभ्योंको दुःख हुआ वे उसकी इस हालतका समस्त पूरा पूरा वृत्तांत जाननेकेलिये अपनी अपनी उत्सुकता दिखलाने लगे। अवधिज्ञानधारी गुणचंद्र मुनिवरने जब उसकी और उसकी हालतसे आश्चर्य सागरमें डुबकी लगानेवाली सभाकी वैसी दशा देखी तो वे अपने सत्यार्थ पदार्थोंके जनानेवाले ज्ञानकी ओर दृष्टि लगाकर इसप्रकार कहने लगे—

"हे विशुद्ध हृदयवाली शीलधुरंधर जीवंजसे! धैर्य रख। जिस पुत्रके न होनेसे आज तुझे दुःखका सामना करना पडा है वह पुत्र तेरे शीघ्र ही उत्पन्न होगा। संसारमें यों तो सब हीके पुत्र हुआ करते हैं और वे अपने अपने माता पिताओंको प्यारे भी लगा करते हैं परंतु तेरे ऐसा वैसा सामान्य पुत्र न होगा। समस्त विद्यायोंका पारगामी वह अपनी गंभीरतासे समुद्रकी गभीरताको भी नीचा दिखासकेगा। सुंदरतामें जगद्विजयी कामको भी वह परास्त कर देगा। धर्म अर्थ और काम इन तीनों पदार्थोंका बराबर सेवन करनेवाला होगा। जिसप्रकार सूर्य अपने तेजसे आकाशको भूषित करता है उसीप्रकार वह भी अपने गुणोंके तेजसे तेरे कुलको भूषित करेगा। तू अधिक मत घबडा। शोक करनेकी तुझे कोई आवश्यकता नहीं है। मैं निश्चयसे कहता हूं कि तेरे थोडे दिनोंमें ही पूर्वोक्त गुणशाली पुत्र होगा और वह तेरे कुलको दीप्त करेगा।"

मुनि महाराजके मुखसे अपने पुत्रकी उत्पत्ति और उसके गुण वर्णन सुनकर सेठानी जीवंजसाके हर्षका पारावार न रहा। जो थोडीदेर पहिले उसका मुखवृक्ष पुत्र विरहरूपी ग्री-

ग्रीष्मऋतुके असह्य आतापसे कुम्हलाकर फीका पड़ गया था वही अब पुत्रोत्पत्तिकी आशारूप मेघवर्षा होनेसे हरा भरा होगया। उसके मुखमंडलपर पहिलेसे भी अधिक दीप्ति दमकने लगी। जो अश्रुप्रवाह उसके शोकके कारण बहा था अब वह ही हर्षसे जायमान हो बहने लगा। मुनि वचनोंसे जीवंजसाका वृत्तांत जानकर संपूर्ण सभाके हर्ष और विस्मयका कुछ भी ठिकाना न रहा। वह मुनिके उस परोक्ष वृत्तांतके जाननेकी शक्तिकी भूरि भूरि प्रशंसा करने लगी। अब तक जिन मुनिको वह सामान्य समझती थी उन्हें ही अब बडे महत्वसे देखने लगी। सो ठीकही है संसारी जीव अपनीसी शक्तिवाले ही सामान्य पुरुष सबको समझा करते हैं जब परीक्षाका अवसर आता है तब ही गुणोंकी कद्र और हीनाधिकताकी समझ होती है।

मुनि महाराजका जब समस्त उपदेश समाप्त हो चुका और सभाके लोग अपने अपने गृहस्थीके कार्य करनेके लिये घर चले गये तो सेठानी जीवंजसा भी अपने परिवारके साथ घर की तरफ रवाना हो गई और खुशी खुशी निर्विघ्न रीतिसे अपने घर जा पहुंची। जीवंजसाकी किंवदंती और उसके भावी पुत्रकी उत्पत्तिका समाचार जब सेठ जीवदेवने सुना तो उसे भी बड़ा हर्ष हुआ और उससे अपने मनके संपूर्ण अभीष्ट सिद्ध हुये समझने लगा।

थोडे दिनोंके बाद सेठानी जीवंजसाने गर्भ धारण किया। वह जिस प्रकार प्रातःकालमें अरुणोदयसे पहिले गर्भस्थ सूर्यके प्रतापसे पूर्व दिशा अधिक दीप्त होने लगती है उसीप्रकार गर्भमें

आये हुए पुण्यात्मा पुत्रके गुणोंसे अधिक दीप्त होने लगी उदर-स्थ बालकके होनेसे उसके शरीरकी एक विलक्षण शोभा हो गई। मुखमंडल उसका पीला पड गया। कुच अग्रभागमें श्यामवर्ण होगये। उदरकी त्रिवलि सर्वथा नष्ट हो गई। रह रह कर क्षण क्षणमें जंभाईयोंका आना प्रारंभ हो गया। घरके काम काज करनेमें अब उसका जी कम लगने लगा। जिन कार्योंको वह पहिले बड़ी फुर्तीसे करती थी उनके करनेमें अब उसे आलस्य आने लगा। और यहांतक कि वह अब धीरे धीरे धीरे चलनेमें भी कष्ट समझने लगी।

इसप्रकार गर्भस्थ बालककी सूचना देनेवाले जब समस्त चिह्न उसके प्रगट होगये तो उसे उसपुत्रके गुणोंकी सूचना देनेवाला जिनेंद्र भगवानके पूजन करनेका दोहला भी उत्पन्न हुआ और इस शुभ दोहलासे उसके समस्त कुटुंबियोंमें भी आनंदकी छटा छागई।

दिन वीतते देरी नहीं लगती। धीरे धीरे सप्ताह पखवाड़े महीना और युग तक वीत जाया करते हैं। सेठानीजीवंजसाके गर्भमें आये हुये बालकको भी धीरे धीरे नौ महीने पूर्ण होगये और उसके उत्पन्न होनेका दिन आगया। यथासमय सेठानीने पुत्ररत्नको जन्म दान दिया। घरके सब लोगोंमें आनंदकी सीमा न रही। दासी दास आदि सबही खुशीके मारे फूले न समाये। विजलीके समान इसकी खबर सेठजीके और समस्त नगरवासियोंके कान तक पहुंच गई। सेठ जीवदेवने अपने पुत्र जन्मकी खुशीमें दूर दूर देश देशांतरोंसे आये हुये दीन दुखियाओंको और आशीर्वाद पढनेवाले ब्राह्मणों-

को इच्छासे भी अधिक दान दिया। एवं मंगल गीत वादित्र आदि हर्षसूचक अनेक कार्य कराये। एक तो सेठ जीवदेव वैसे ही दान देनेमें कुशल थे परंतु जब उन्हें ऐसा हर्षवर्द्धक शुभसंयोग प्राप्त होगया तो अब उनके उस गुणकी बात ही क्या थी? उन्होंने खूब ही उत्सव कराया और घर पर आया हुआ ऐसा कोई भी दीन याचक व्यक्ति न छोडा जो अपने मनोरथको पूर्णकरके हर्षित हो घरको वापिस न गया।

सेठजी जैनधर्मके भी पूर्ण भक्त थे। सर्वज्ञप्रणीत शासनके अनुसार प्रवृत्ति करना ही वे श्रेयस्कर और उत्तम समझते थे इसलिये उन्होंने आगमानुसार अपने पुत्रके जातकर्म आदि संस्कार करा बडे ठाठ बाठसे जिनेंद्र भगवानकी पूजन कराई और अपने वृद्ध बंधु बांधवोंके साथ उन्होंने उस बालकका नाम जिनदत्त रक्खा।

पुत्र जिनदत्त अपने समान रूपवाले लडकोंके साथ धीरे धीरे बढने लगा। जिसप्रकार द्वितीयाके चंद्रमाकी दिनोदिन कलायें बढती जाती हैं उसीप्रकार उसके अंग और गुण धीरे धीरे बढने लगे। जो पुत्र पहिले रोनेके सिवा कुछ न कहसक्ता था वह अब पापा मामा आदि शब्दोंसे इसारे करने लगा। जो खटोला आदि पर लेटनेके सिवा कुछ न करसक्ता था अब वह घुट्टओंके बल पृथ्वीपर सरकने लगा उसके बाद उसने अव्यक्त वाणी छोड स्पष्ट वाणी बोलना प्रारंभ करदिया एवं पृथ्वीके बल सरकनेकी जगह विना किसीकी सहायताके स्वयं खडा हो चलने फिरने लगा।

चिरंजीव जिनदत्तने जब शिशु अवस्थाको छोड बाल्य अवस्थामें पैर पसारा तो उसके पिता जीवदेवने किसी बुद्धिमान् श्रावकके पास उसे सत्य शिक्षासे शिक्षित होनेकेलिये सुपुर्द करदिया और वह उससे विनयावनत हो पढने लगा।

विद्या शीघ्र आनेमें बुद्धि, विनय और परिश्रम चाहिये। यदि इन तीनोंमें कोई एक भी कारण कम हो तो वह शीघ्र नहीं आती। हमारे चरितनायक जिनदत्तमें ये तीनो ही बातें उपस्थित थीं। वह बुद्धिका भी पैना था। विनयी भी खूब था और परिश्रम करनेमें भी सुनिपुण था इसलिये उसने बहुत ही थोडे दिनोंमें प्रधान प्रधान सर्वशास्त्र पढ डाले और उनमें पंडित हो गया। चतुर जिनदत्तको केवल इन मानसिक शक्तिको बढानेवाले शास्त्रोंको पढकर ही संतोष न हुआ। उसने प्रसिद्ध प्रसिद्ध अस्त्रशास्त्रियोंसे उनकी शुश्रूषाकर धनुष छोडना तलवार चलाना आदि शारीरिक शक्ति बढानेवाली क्रियायें भी सीखलीं एवं वह उनमें भी पारंगत होगया।

इसप्रकार जब शारीरिक और मानसिक शक्तिवर्द्धक ज्ञान उसने प्राप्त करलिया तो अब उसका लक्ष्य अपने पिता प्रपिता आदिके कार्योंकी ओर भी गया। उसने जिसप्रकार अपने पूर्वजोंकी ऐहिक जीविका निर्वाहार्थ क्रिया देखी उसके सीखनेकेलिये भी उसका चित्त लालायित हो गया। पूर्वापर विचारकरके उसने अपने परंपरागत अर्थशास्त्रके ज्ञान संपादनको भी अपना प्रधान लक्ष्य समझा। इसलिये उसने उस विद्याका अध्ययन करके भी अपना वैश्यत्व यथार्थ करडाला और अब

वह अपने पिता आदिके समान प्रज्ञानुजीवी होनेके भी सर्वथा योग्य होगया ।

जिनदत्त अब बालक नहीं रहे । जबसे पढना प्रारंभ किया तबसे अबतक उनके मानसिक परिवर्त्तनके साथ शारीरिक संगठनमें भी खासा परिवर्त्तन हो गया । वे अब बालक कह-लानेके योग्य नहि रहे-युवा अवस्थाके संपूर्ण लक्षण उनमें प्रकट होगये । जिसप्रकार चंद्रमाकी किरणोंसे आकाश शोभित होता है, श्रेष्ठ तपोंके तपनेसे मुनीश्वर श्रेष्ठ समझे जाते हैं, न्यायमार्गका अनुसरण करनेसे राजा प्रशंसनीय गिना जाता है नवीन पुष्पोंसे वृक्ष शोभित होता है और राजहंसों-से सरोवर अच्छा मालूम पड़ता है उसीप्रकार यौवन लक्ष्मी-केआनेसे वे अपने शारीरिक संगठनके कारण अधिक तेजस्वी और शोभायमान दीखने लगे, मानसिक शक्तिके बढनेसे मनु-ष्योंमें प्रतिष्ठित हो गये, जिनेंद्र भगवान्‌के चरणोंमें अविचल भक्ति रखने लगे। अपने सहधर्मी सज्जन पुरुषोंसे अधिक प्रीति करने लगे और दया आदि नाना गुणोंसे भूषित होनेके कारण समस्त संसारमें प्रसिद्ध होगये ।

इसप्रकार श्रीमद् आचार्य गुणभद्रभदंतविरचित संस्कृत जिनदत्तचरित्रके भावानुवादमें पहिला सर्ग समाप्त हुआ ॥ १ ॥

द्वितीय सर्ग।

हमारे चरितनायक जिनदत्त युवावस्था आनेके कारण आज कलकेसे युवकोंके समान काम विलाससे पीडित न होगये थे। यद्यपि उनका शरीर कामारंभके सूचक यौवनके प्रभावसे दमक निकला था तो भी उनके मनपर उसका वैसा प्रभाव न पड पाया था। वे अपने इन दिनोंके समयको कभी तो काव्यरूपी अमृतके आस्वादन करनेमें विताते थे, कभी विनोदक क्रीडाओंके करनेमें लगाते थे, कभी अपने गुरुओंके साथ वाचनिक शक्तिको बढानेकेलिये वाद करनेमें खर्च करते थे, कभी वितंडा कभी जल्प, और कभी अन्य किसी प्रकारसे शास्त्र चर्चा करनेमें लगाते थे। वे कभी घोडेपर चढनेसे अपने मनको प्रसन्न करते थे, कभी रत्नोंकी परीक्षा कर अपना उस विषयका पांडित्य दिखलाते थे कभी साधुओंकी सेवाकर आशीर्वाद ग्रहण करते थे, कभी जिनेंद्र भगवानकी पूजा भक्ति कर अपना आस्तिक्य दिखलाते थे और कभी राजकार्य कर राजभक्त होनेका तथा राजनीतिनिपुणताका अपना परिचय देते थे।

सेठ जीवदेवने जब इनकी यह अवस्था देखी तो उन्हें बडी चिन्ता होने लगी। जैसे तैसे तो एक पुत्र पाया था और जब वह भी विरागी हो जीवन विताते देखा तो उनसे न रहा गया। वे इस बातकी कोशिश करने लगे कि चिरंजीव जिनदत्त किसीप्रकार विवाह करनेपर राजी हो जाय। सेठजीने इस अपनी आंतरंगिक कामनाको जब ऐसे वैसे होते न देखा तो

उसे पूरीकरनेकेलिये उन्होंने अपने पुत्रके साथ सर्वदा रहनेके लिये कई मित्र नियुक्त कर दिये और वे नाना तरहसे उनके मनको कामुकताकी ओर प्रवृत्त करानेका उद्योग करने लगे । कभी तो वे नियुक्त नवीन मित्र जिनदत्तको विलासियोंके हरे भरे वगीचोंमें लिवा जाते और वहां उनके युगलोंकी परस्पर काम क्रीडाको दिखाते । कभी जल क्रीडाको करती हुई कामिनियोंके स्तन कुंकुमोंकी पीतमासे पीत वापियोंका निर्दशन कराते । कभी पण्यवनिताओंके हावभावोंसे भरे सुंदर रूपका अवलोकन कराते । कभी नाट्य शालाओंमें ले जाते । कभी मनोहर कामोद्दीपक गीत सुनवाते । कभी कामरसकी भरी गहरी गहरी दिल्लगी करते । कभी नाना सुगंधियोंसे सुगंधित माल्य भूषण पहिनाते और जिनके रूपके देखनेसे बडे बडे मनस्वी ब्रह्मचारियोंके भी मन विचलित हो जांय ऐसी अनुपम स्त्रियोंसे प्रतिदिन इनका स्नान करवाते।

एक दिनकी बात है कि अपने पूर्व मित्रोंके साथ जिनदत्त दर्शन करनेकी इच्छासे कोटिकूट चैत्यालय गये थे कि वहां उसके दरवाजेकी सिड़ियोंपर चढते समय उनकी दृष्टि एक पुत्तलिकापर जापडी । वह पुत्तलिका मंदिरके मंडपद्वार पर किसी प्रसिद्ध कारीगर द्वारा उकेरी गई थी । उसके प्रत्येक अंगका निर्माण देखनेसे शिल्पकलाकी पराकाष्ठा मालूम पड़ती थी । उसका हर एक शरीरका अवयव स्पष्ट और मनोहारी था । हमारे चरितनायककी ज्योंही दृष्टि इसके रूप पर पडी वे चकित हो गये । उनके क्षण भर पहिले जो पवित्र भाव थे और जो अभी तक किसी भी कारणसे विकृत न हो

पाये थे वे सहसा दूसरे ही प्रकारके होगये । मूर्तिकी मनोहारिताने उनपर अपना पूरा प्रभाव जमा लिया । पहिले तो उनकी दृष्टि उस मूर्तिके समस्त रूपपर पड़ी और फिर उसके बाद क्रम क्रमसे शरीरके हर एक अंगपर पडने लगी । उनके नेत्र ज्योंही उस मूर्तिके चरणरूपी कमलोंपर पड़े तो वे भ्रमरके समान उनकी ही गंध लेते रहे । नितंब भागपर पड़े तो निधिभरित कलशकी तरफ दरिद्रकी भांति उसकी ही तरफ लालसाभरी दृष्टिसे देखने लगे । लावण्य रूपी रससे परिपूर्ण नाभि कुंडपर पड़े तो मदनकी तापसे पीड़ितके समान उसीमें डुबकी लगाने लगे । रोमराजीपर पड़े तो महादेवसे लिखी हुई प्रशस्तिके समान उसे ही पढते रह गये। मध्यस्थ कृश उदरपर पड़े तो त्रिवलीरूपी रज्जुसे बंधे हुयेके समान वहीं अटक गये । मनोहर स्तनरूपी दो पर्वतोंके मध्यमें पड़े तो उनके मध्यवर्तिनी खाईके समान उसीमें ही गिर कर रह गये । मनोहर हारके ऊपर पड़े तो उसका सहारा ले किसीप्रकार रेखात्रितयसे सुंदर कंठ तक पहुंचनेकी कोशिश करने लगे । बाहुओं पर पड़े तो समस्त संसारमें भ्रमण करनेसे श्रांत हुये कामके आश्रय स्थानके समान सुंदर उसीका आश्रय ले ठहर गये, मुखचंद्रपर पड़े तो कामकी दाहसे संतप्तके समान उसीकी शीतल किरणोंकी छायामें रहनेकी चेष्टा करने लगे और केशरूपी पाश (जाल) पर पड़े तो वे यहीं उससे बद्ध हो निश्चेष्ट हो गये ।

सेठ जिनदत्तने जब इसप्रकार अपनी दृष्टिको उसके केशा-

पाश द्वारा कामसे बद्ध पाया और अपनेको उसके सर्वथा अधीन समझा तो उन्हें बड़ी चिंता हुई। वे सोचने लगे-

"अहा! इस मूर्तिका रूप बड़ा ही अनुपम और उत्तम है इसके निर्माण करनेमें शिल्पीने शिल्प विद्याका पूरा पूरा परिचय दिया है। पाषाणसे निर्मित होनेपर भी इसमें कांति, लावण्य, सद्रूप, सौभाग्य आदिकी यथेष्ट आभा दीख पड़ती है। जिसका यह प्रतिबिंब है न जाने वह कितनी सुंदर न होगी। ऐसा बढ़िया रूप तो विना किसी आधारके कोई कभी खींच नहिं सका इसलिये अवश्य ही यह किसी न किसीकी प्रतिलिपि है। मैने सैकड़ों आजतक एकसे एक उत्तम सुंदर स्त्रियां देखी हैं। परंतु कभी भी पहिले इसप्रकार मेरा चित्त विकृत न हुआ था। आज इस मूर्तिके देखने मात्रसे मेरे चित्तकी विचित्र ही दशा हो गई है। ऐसा स्नेह विना पूर्व भवके संयोगके कभी नहीं होता। यदि यह मूर्ति किसी आधारके आश्रय न हुई किसीकी प्रतिमूर्ति न निकली तो मेरा जीवन मुझे संकटमय ही दीखता है। मेरे प्राण बचना कठिन है। परंतु ऐसा होना असंभव है अवश्यही यह किसी जीती जागती स्त्रीकी प्रतिमूर्ति है काल्पनिक नहीं क्योंकि किसी पदार्थको देखकर जो प्रेम होता है वह पूर्वभवके संबंध से होता है। विना उसके वह कभी उदित नहीं होता। अचेतन पदार्थमें जो रूपातिशय रहता है उससे केवल उसकी शोभा ही होती है किसीको किसीप्रकारका अनुराग विशेष नहीं होता और मुझे इससे अनुराग विशेष हो रहा है।

पहिले तो सांसारिक भोग ही भोगना बुरा है और यदि

वे भोगे ही जांय तो ऐसी ही आनंददायक अनुपम सुंदर स्त्रीके साथ उन्हें भोगना चाहिये। यह मेरे मनको अतिशय अपनेमें अनुरक्त कर रही है और यह है भी वास्तवमें श्रेष्ठ। इसलिये यदि इसके साथ ही मैंने संसार सुख न भोगे तो फिर पालेसे म्लान किये गये आभारहित कमलके समान मेरा यह नव यौवन ही निरर्थक है। इसके साक्षात् होने-मात्रसे कामने मेरे ऊपर अपना बाण ताना है इसलिये यह संसारमें सुंदरियोंकी शिरोमणि है।

अहा! अब मालूम हुआ। संसारमें ऐसी २ ही अनेक मनोहारिणी रमणियां है इसीलिये जो लोग बडे २ तत्त्वोंके जाननेवाले भी हैं वे भी इनके रूपमें फंसकर संसारसे विरक्त नहि होने पाते। अरे! रुद्र आदिक अनेक तेजस्वी पुरुष भी इनके कटाक्ष बाणोंसे भिद गये और आसक्त हो इनमें ही जब रमण करने लग गये तो मुझसरीखे क्षुद्र पुरुषकी तो बात ही क्या है? यह मुझे सुंदरतारूपी जलकी भरी वापी मालूम पड़ती है इसलिये मैं इसके समस्त सौंदर्यरूपी जलको क्या अपने नेत्ररूपी पात्रोंसे पीजाऊं? क्या इसको समस्त अपने अंगोंसे स्पर्शकर डालूं और क्या इसमें प्रविष्ट हो एकम एक होजाऊं?"

हमारे चरितनायक इसप्रकारकी उधेड़ बुनमें लग अपना समय बिता ही रहे थे और स्तंभित हो अपने जिनदर्शनके उद्देश्यको भूल रहे थे कि इतनेमें इनके साथी मित्र मकरंदने इनके मनका भाव ताड़ लिया। वह इनकी आकृतिसे पुत्तलिकाका प्रभाव इनके ऊपर पड़ा देख मनही मन अति

प्रसन्न हुआ। चिर कालके बाद अपने और सेठ जीवदेवके मनोरथको सिद्ध हुआ देख इसके हर्षका पारावार न रहा। वह मुस्कराकर अपने मित्र जिनदत्तसे बोला—

"मित्र! क्या इस अचेतन पुत्तलिकाने आपका मन हरण कर लिया है? जो आप इस तरह निर्मनस्क हो खडे हैं। क्या आप अपने यहां आनेके उद्देश्यको सर्वथा भूल गये?"

साथी मकरंदके इस ताना भरे वाक्यसे लज्जित हो और "जैसा आप कहें" ऐसा वचन कहकर जिनदत्त अपने हाथसे उसका हाथ पकडकर मंदिरके भीतर प्रविष्ट होगये और जिनबिंबके दर्शनकर कुछ कालकेलिये अपने मनोहारी लक्ष्य को भूल गये। मंदिरमें जाकर जिनदत्तने भगवानकी तीन प्रदक्षिणा दीं, उनके शांतस्वरूपका अनुभव किया और अनेक स्तोत्रोंसे उनकी स्तुति की।

धार्मिक कृत्य समाप्तकर जिनदत्त ज्योंही मंदिरसे बाहिर हुये कि उनका मन फिर वैसाका वैसा ही होगया। भगवानकी शांत मूर्तिको देखकर जो भाव शांत हुये थे वे फिर उस प्रतिमूर्तिके स्मरणसे विकृत होगये और जिसप्रकार मंत्रसे आकृष्ट पुरुष बिना अपनी इच्छाके जहां ले जाओ वहां चला जाता है उसीप्रकार ये भी अपनी इच्छाके न होते हुये भी घर की तरफ रवाना होगये।

घर पहुंचकर हमारे युवा जिनदत्तकी विलक्षण ही हालत होगई। इन्हें एक साथ कामज्वरने अपने तीव्र आघातसे घायलकर दिया। कामज्वरके असह्य आतापसे ये इतने घबडा गये कि महान् महान् अगणित पुष्पोंकी शय्यापर लेटकर भी

ये शांतिलाभ न करसके। उस अपने लक्ष्यके विरहमें इनका खाना पीना सब कुछ छूट गया। राति दिन सिवा उस लक्ष्यके स्मरणके ये कुछ भी विनोदादिक न करने लगे। कामज्वरकी शांत्यर्थ इनके शरीरपर जो चंदनका लेप किया, जो कपूर घिसकर लगाया गया और जो कुछ भी पद्मनाल खसखस आदि शीतल पदार्थोंकी मालिश की गई उस सबने इनकी कामाग्निपर घीका काम किया--घटनेके बदले उन उपचारोंसे उसने और भी तीव्र वेग धारण किया। 'हाय! प्रिय पदार्थोंके वियोग होनेसे तो यही अच्छा है कि इस पर्यायका अंत ही हो जाय जिससे इसके ये समस्त दुःख न सहने पडें। अरे काम! जिसकी केवल प्रतिमूर्ति ही देखकर मेरा मन इतना मुग्ध हो गया, जिसने अपने साक्षात् दर्शन न देकर अपनी तस्वीर दिखाकर ही मेरा मन हरण कर लिया उसको तुम क्यों नहीं वाणोंकी वर्षासे जर्जरित करते? मेरे मनको चुरानेसे वह अपराधिनी है उसको तुम्हे दंड देना चाहिये। निरपराधी मुझपर अपनी वाणवर्षाकर दंड देना तुम्हारा सरासर अन्याय है।' इत्यादि असंबद्ध वचन कह कर उन्होंने उस एक स्वरूप ही तीनो जगत्को समझा। सर्वत्र उन्हें वह अपनी मनोहारिणी छवि ही छवि दीखने लगी। कामज्वरकी तीव्र उष्ण स्वासोंसे उनके ओष्ठ म्लान हो सूख गये इसलिये मन बहलानेकेलिये गानेकी इच्छा होनेपर भी वे न गा सके और उनकी इस इच्छाको देख जो कोई मधुरस्वरसे गाने लगा उसके उस स्वरको उन्होंने कामके धनुषके टंकारके समान भयंकर कर्णपीडा करनेवाला समझा। उनकी उत्तरो-

पर इस कामज्वरसे भयंकर ही दशा हो गई। वे अपनी दोनों बाहुओंको पसारकर उसके आलिंगनकी इच्छासे कभी पृथ्वी-पर लेटने लगे। कभी आकाशमें हाथ बढाने लगे और कभी दिशा विदिशाओंमें उठ उठकर भागने लगे। इसप्रकार उनका संपूर्ण शरीर पसीनेकी बूंदोंसे तलवतल होगया और मूर्च्छाने उन्हें आ घेरा।

सन्निपात ज्वरके समान कामज्वरसे होनेवाली जब सब चेष्टायें सेठ जिनदत्तकी उनके मित्रों और उपचारकोंने देखीं तो उनके छक्के छूट गये। वे घबराकर सेठ जीवदेवके पास पहुंचे और उनसे समस्त वृत्तांत सुनाकर शीघ्र ही प्रतिक्रियाकी प्रार्थना करने लगे।

पुत्रकी उपर्युक्त दशाका वर्णन सुन सेठजी मनमें बहुत ही खुश हुये, मारे हर्षके उनके शरीरमें रोमांच खड़े हो आये। वे 'अहा! संसारमें स्त्रियोंसे बलवान् कोई भी पदार्थ नहीं है। जिस कार्यको कोई भी पदार्थ सिद्ध नहीं कर सक्ता उसे वे सहज में ही कर डालती हैं। देखो! जिन लोगोंके हृदय-पटलको तीक्ष्णसे तीक्ष्ण भी वज्रसूचियां नही भेद सक्तीं उनके ही उस कठिन वक्षस्थलको ये अपने कटाक्षों द्वारा बातकी बातमें घायल कर देती हैं। मेरा पुत्र इतना बडा पंडित और ज्ञानी है परंतु उसे भी उन्होंने अपने तीरका निशाना बना डाला है। यह मेरे लिये बड़े ही सौभाग्यकी बात है। अब मुझे 'मेरी आगै कुलपरंपरा कैसे चलैगी' इस बात की कोई चिंता नही रही' इत्यादि आगामी शुभसूचक भाव-नाओंका ध्यान कर कुछ कुछ मुस्कुराने लगे और पुत्रकी

दशाके सूचक मित्रोंको तांबूल भूषण आदिसे यथायोग्य सत्कारकर पुत्रकी वास्तविक अवस्थाको जाननेकेलिये चल दिये।

पुत्रके पास पहुंचकर सेठजीने जब उसकी वैसी अवस्था देखी तो वे गहरे विचारसागरमें डूब गये। पहिले तो वे यह विचार कर कि 'पुत्रकी इससमय कामज्वरसे अवस्था तो वडी ही भयानक है और इसके मनोरथकी सिद्धि फिल हाल वहुत ही दुःसाध्य मालूम पड़ती है। न जाने भाग्यमें क्या होना वदा है? इसके अभीष्टकी सिद्धि होगी या नहीं।" कुछ देर तक चुप रहे परंतु फिर अपने इस मनके भावको मनमें ही छिपाकर उसे ढाड़स देनेकेलिये बोले—

"चिरंजीव प्यारे बेटा जिनदत्त! तू खेद छोड। तू महा बुद्धिमान् है, तेरेलिये अधिक कहना व्यर्थ है। तेने जो खाना पीना स्नान आदि करना छोड रक्खा है उसे फिर तू निश्चिंत हो कर। तेरे समस्त अभीष्टोंको मैं अवश्य ही शीघ्र पूरा करूंगा। जिस कन्याको देखकर तेरा मन मुग्ध हो गया है वह चाहें राजाकी लडकी हो, चाहें विद्याधरकी कन्या हो और चाहें अन्य किसी पुरुषकी ही हो अवश्य ही उसका तेरे साथ संयोग करा दूंगा। तू यह न समझ। मैं तेरे लिये कुछ यत्न न करूंगा। नहीं! अपने समस्त कार्य छोड कर भरसक ऐसा दृढ प्रयत्न करूंगा जिससे अवश्य ही तेरा उसके साथ विवाह हो जायगा।"

उपर्युक्त साहसभरे वचनोंसे पुत्रको कुछ संतुष्ट कर सेठ जीवदेव, अपने पुत्रकी प्यारी मनोहारिणी मूर्तिको देखने

के लिये कोटिकूट चैत्यालयकी तरफ गये और वहां उसे देखकर अपना शिर हिलाते हुये कहने लगे-

"अहा! संसारकी समस्त नारियोंके रूप और लावण्यको अपने रूप और लावण्यके प्रभावसे जीतनेवाली यह मूर्ति धन्य है। अवश्य ही यह किसी न किसीकी प्रतिमूर्ति है। विना किसी कन्याके रूप देखे ऐसी मूर्तिका बनाना कठिन ही नहीं वल्कि असंभव भी है। मेरे पुत्रका जो इसके रूप देखनेसे मन मुग्ध हो गया है सो ठीक ही है। ऐसे रूपको देखकर मनका मुग्ध न होना ही आश्चर्यकारक है। जो ऐसे अप्रतिम रूपको देखकर भी मुग्ध नहि होते वे वास्तवमें या तो नीरस आत्मा हैं या फिर अचेतन पत्थरके ही समान हैं।"

सेठजी ने कुछ देर तक इस तरहका विचारकर जिस कारीगरने उस मूर्तिको अंकित किया था उसे ढूंढकर बुलाया और उससे पूछा कि-"महाभाग! यह किसकी तो मूर्ति है? कहां की यह रहनेवाली है? और यह कैसी है?" उत्तरमें शिल्पी बोला—

"सेठजी! चंपानगरीमें एक अतिश्रेष्ठ विमल सेठ रहते हैं। उनकी यह सुंदर सुता है। एक दिन मैंने इसे अपनी समवयस्क सहेलियोंके साथ गेंद खेलते एक जगह देखा था। इसका रूप बडा ही मनोहर है। समस्त शरीरके अवयव सुकोमल हैं। उससमय यह अपने केशपाशकी चोटीमें चारों तरफ पुष्प लगाये थी। उनकी सुगंधिसे गुंजारते हुये भ्रमर इसके शिरपर भ्रमणकर अपूर्व ही शोभा बढा रहे थे। खेलमें परिश्रम पडनेके कारण इसके कपोल भागपर पसीनाकी सूक्ष्म

सूक्ष्म बिंदुयें झलक रहीं थी। यह अपने उडते हुये पक्षोंको और लटकते हुये हारको बांधकर मंडलीमें लक्ष्य बांधकर खेल रही थी और अतिशय रमणीय मालूम पडती थी। ज्योंही मैंने इसको देखा तो मुझे बडा ही आश्चर्य हुआ और इसकी सुंदरता पर प्रसन्न हो मैंने वहांसे आकर यह मूर्ति यहां उकेर दी। यद्यपि मैंने उसी कन्याको मनमें रखकर यह मूर्ति बनाई है तो भी मुझे विश्वास है कि यह पूरी तरहसे वैसी नहीं आई है। यह केवल उसका सौवां हिस्सा है।"

कारीगरके उपर्युक्त वचन सुनकर सेठजी वडे प्रसन्न हुये। उन्होंने उसे खूब पारितोषिक दिया और जिनदत्तकी प्रतिमूर्ति किसी पटपर उससे चित्रित करनेको कहा। जब मूर्ति पटपर अंकित हो गई तो सेठजीने संदेशकुशल श्रेष्ठ पुरुष शीघ्र ही बुलवाये और उन्हें चंपापुरी विमल सेठके यहां जानेको कह रवाना कर दिया।

संदेशवाहक लोग यथासमय चंपापुरी पहुंचे और विमल सेठके यहां जाकर जिनदत्तका चित्रपट तथा सेठजी का पत्र दिखाकर बोले—

" श्रीमान्! हमारे सेठ साहबने आपकी सेवामें यह अपने पुत्रका चित्र और यह उसके साथ लिखितसंदेश भेजा है। इसका आप जैसा उचित समझें वैसा उत्तर देकर हमें कृतार्थ करें।"

सेठ विमलचंद्र गंभीर और विवेकी पुरुष थे। उन्होंने ज्योंही जिनदत्तका फोटू और सेठ जीवदेवका संदेश भरा पत्र देखा वे मनमें बडे ही खुश हुये। उन्होंने अपने कर्तव्य-

को घर बैठे और शीघ्र ही सफल होते देख आगत पुरुषोंका खूब ही आदर सत्कार किया। सेठजीके पास कार्यवश आई हुई पुत्री विमलाने जब उस चित्रको देखा तो उसका चित्त भी अचानक ही कामके बाणोंसे घायल होने लगा। चित्रके देखने मात्रसे उसके मनकी विलक्षण दशा हो गई। उसके मनमें उस चित्रका रूप मानो संक्रांत ही हो गया इस रूपसे वह निश्चेष्ट खडी हो गई। उससमय उसकी एक सखी वसंतलेखा भी वहां उपस्थित थी। उसने ज्योंही उस चित्रको देखने चाहा तो उसने उसे तो वह नहिं देखने दिया और स्वयं एकांतमें टकटकी लगाकर देखने लगी तथा मनही मन मुस्कराने लगी। विमलाके इस वर्तावसे सेठ विमलचंद्रने उसके मनका भाव ताड लिया। वे अपनी सम्मतिमें पुत्रीकी भी सम्मति समझकर अपने बड़े लोगोंसे इस विषयमें सम्मति पूछने लगे। जब कन्याकी वरमें और वरकी कन्यामें उन लोगोंने आसक्ति देखी तो उन्होंने भी इस कार्यको श्रेष्ठ समझा और अपनी सम्मति प्रकटकर हर्ष सूचित किया। इस प्रकार सेठ विमलचंद्रने सबकी सम्मति और आज्ञा पाकर अपनी कन्याका जिनदत्तके साथ विवाह करना स्वीकार कर लिया और पत्रमें उक्त बातको लिखकर आये हुये पुरुषोंको पारितोषिक दे विदा कर दिया।

सेठ विमलचंद्रका पत्र पाकर जिनदत्तके पिता जीवदेवको भी बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने अपने मनके अनुसार अपने पुत्रकी भावी वधू पाकर शीघ्र ही जिनदत्तको विवाहोचित समग्र सामग्रीसहित चंपापुरी भेज दिया। पिताकी आज्ञा-

नुसार अपने मनोहारी लक्ष्यको प्राप्त करने की अभिलाषासे पहुंचकर वे चंपानगरीके बाहिर उद्यानमें ठहर गये और सेठ विमलचंद्रको अपने आगमनकी सूचना दे निश्चिंत हो गये।

सेठ विमलचंद्रने जब जिनदत्तके आगमनका समाचार सुना और अपनी पुत्रीका विवाहमंगल निकट समझा तो उनके हर्षका पारावार न रहा। उन्होंने शीघ्र ही अपने भावी जामाताका यथोचित सत्कार किया। उनको स्नान आदि विधि कराने के लिये अनेक मनुष्य नियुक्त कर दिये। सैकड़ों घर और बाहिरकी स्त्रियां मंगल गीत गाने लगीं, नृत्य करने लगीं और नाना तरहसे अपने हाव भाव दिखाकर उत्सव मनाने लगीं। तत घन सुषिर आदि चारो प्रकारके बाजे ब-बजने लगे और उनके शब्दोंको सुनकर नगरकी स्त्रियां अप-ना २ काम काज छोडकर सडकके किनारोंके मकानोंके झरो-खोंमें आकर एकत्र होने लगीं। जब योग्य समय हो गया और नगरमें प्रवेश करना उचित समझा तो जिनदत्त उससमयके योग्य सवारीमें सवार होकर अपने मित्रोंके साथ साथ उस नगरमें प्रविष्ट हो गयेओर स्त्रियों द्वारा आकांक्षापूर्वक देखे गये गये शीघ्रही अपने श्वसुरके घर पर आ पहुंचे।

हमारे चरित नायककी जब समस्त विवाहके समय होने वाली क्रियायें यथाविधि समाप्त हो गई और पाणिग्रहणके लिये कन्या बुलाई गई तो उन्हें उस अपनी प्यारीके साक्षात् देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। ज्योंही कामकी ध्वजाके समान मनोहारिणी उस विमलाको उन्होंने साक्षात् देखा त्योंही प्रतिलिपि रूपमें उसके देखनेसे जो मनमें भाव उदित हुये थे

उनका फिर पूर्व अवस्थासे भी अधिक संचार हो गया। उस-समय तो जिस तिसप्रकार कामुकभाव हृदयमें समा भी गये थे परंतु इससमय तो सर्वथा ही न समासके। विमलाके द-र्शनरूपी जलसे सींचागया कामदेवरूपी वृक्ष उनके मनरूपी पृथ्वीमें सैंकडों शाखाओं और प्रतिशाखाओंसे वृद्धिगत हो-नेके कारण उससे बाहिर निकलनेकी कोशिश करने लगा। कामको लोग चित्तभू केवल चित्तसे उत्पन्न होनेवाला कहते हैं परंतु उससमय वह [काम] उन [जिनदत्त] के समस्त अं-गोंसे उत्पन्न हो रहा था इसलिये पूर्वोक्त वचन सर्वथा मिथ्या प्रतीत होने लगा। ज्यों ज्यों सुंदरता देखनेकेलिये अपने समु-त्सुक चक्षु उन्होंने उसके अंगोंपर डाले त्यों त्यों कामने भी उनपर अपना बाण तानना शुरू किया। जब पुरोहितने विमलाका हाथ जिनदत्तके हाथमें ग्रहण कराया तो वह भी लज्जासे नम्रीभूत हो अपने पैरके अंगूठेसे पृथ्वीको खोदने लगी। कभी तो वह लज्जासे भरे हुये, गाढ उत्कंठावाले, अ-लस, समद, स्निग्ध स्वाभाविक विलाससे शोभित अपने ने-त्रोंको जिनदत्तके मुखपर ले जाती और कभी भूमिकी तरफ नीचेको दृष्टि गढ टकटकी लगा जाती जिससे कि उससमय पृथ्वी और जिनदत्तके मुखका मध्यभाग श्वेत और श्याम वर्णवाले अनेक नीलकमलोंके दलसे आकुलित सरीखा जान पडता था। जब वे दोनों उठकर अग्निकी प्रदक्षिणा देने लगे तो विरहसे उत्पन्न हुये और इससमयके संगमसे दूरहुये बा-हिर स्थित संतापको ही प्रदक्षिणा देते हुये सरीखे मालूम हो-नेलगे। अग्निमें होमे गये लाजोंके संयोगसे जो शब्द हुआ

उससे योग्य वर और कन्याके संगमकी प्रशंसा करते हुयेके समान अग्नि मालूम पड़ने लगी। धुयेंकी प्रतासे जो उनके शरीरमें पसीना आगया वह उनके मनके भीतर नहीं अमानेके कारण वाहिर आया हुआ प्रेमरस सरीखा दीखने लगा। जब वे दोनों मौक्तिक मालासे अलंकृत तोरणवाली वेदिकामें आकर भद्रासनपर वैठ गये तब श्रेष्ठ श्रेष्ठ क्षत्रियाणी नारियां उनके ऊपर जो अक्षत फेंकने लगीं वे उनके सौभाग्यरूपी लताके विखरे हुये पुष्पोंके समान सुंदर दीखने लगे।

इसप्रकार जब वैवाहिक समस्त विधियां समाप्त हो चुकीं और पाणिग्रहण भी हो चुका तो इन्हें गीत नृत्य आदि उत्सवको देखते देखते ही संध्या हो गई। सूर्यदेव इनके शारीरिक वियोगको और अधिक न देख सकनेके कारण ही मानो अस्ताचलकी ओर अपना डेरा डंडा बांध किनारा करगये। यह देख विचारी सरोजिनीको महान दुःख हुआ। वह अपने पतिके इस वर्तावसे वहुत ही दुःखित हुई और उस दुःखको अधिक होनेसे न सहार सकनेके कारण ही उसने अपने कमलरूपी नेत्रोंको वंद करलिया। सूर्यके चले जाने और रात्रिके आनेसे हर्षित हो मृगनयनी कांतायें शृंगारसे सुसज्जित होने लगीं और प्रिय तक अपने मनके अभिप्रायको पहुंचानेकेलिये दूतियोंसे आलाप करनेमें व्याकुल होगईं। आकाशरूपी पृथ्वीपर जो उससमय लालिमा छागई वह कालरूपी हस्तीसे उखाड़े सूर्यकी रक्तधाराके समान मालूम होने लगी। अपनेसे प्रकाशित जगत्‌को अंधकारसे आवृत होते देख जब इसप्रकार सूर्य छिपगये तो लोगोंने अपने नित्य कर्म करनेकेलिये

बत्ती और तेलसे संयुक्त अंधकारके नाशक दीपक जलने शुरू कर दिये। नवीन वधू और वरको कौतुकसे देखनेकेलिये ही मानो आई हुई नक्षत्र और तारारूपी भूषणोंसे भूषित रात्रि जब सर्वत्र व्याप्त होगई तो अंधकाररूपी हस्तीसे आक्रांत अपने राज्यस्थान जगत्को देखकर किरणरूपी सटासे शोभित चंद्रमारूपी सिंह शीघ्र ही आकाशरूपी अपनी राजधानीमें आकर प्रकट होगया। चंद्रमाकी शीतल किरणरूपी चंदनधारासे उससमय कामदेवरूपी महाराजका अंगण लिप्त सरीखा मालूम होने लगा। इसप्रकार जब समस्त दिशायें उसकी निर्मल किरणोंसे व्याप्त होनेके कारण क्षीरसमुद्रके दुग्धसे अभिषिक्त सरीखीं कपूरके रससे लिप्त सरीखीं और अमृतके पूरसे धौत सरीखीं मालूम होने लगीं तो कामदेवने अपना अमोघ बाण धनुषपर चढा लोगोंपर छोडना शुरू किया जिससे शीघ्र ही अभिसारिकायें अपने अपने संकेतस्थलपर पहुंचने लगीं, कामी लोग अपनी अपनी रुष्ट कांताओंके माननिराशमें परिश्रम करने लगे। नवीन वधुयें विचित्र विचित्र रससे कदर्थित होने लगीं। वेश्यायें अपने चातुर्यसे ठगकर नगर निवासियोंको भोग कराने लगीं। केतकीके पुष्पकी प्रचंड गंधसे भ्रमर मधुर मधुर गुंजार करने लगे और विरहिनी स्त्रियोंकी मन स्थित अग्नि प्रचंड रूपसे धधकने लगी।

जब इसप्रकार समस्त लोक कामकी आज्ञाके पालन करनेमें दत्तचित्त होगया तो इन दोनों नवीन वर वधूओंकी भी अधिक देरतक वियुक्त रखना इनके संबंधियोंने उचित न समझा इसलिये शीघ्रही ये केलिघरमें पहुंचाये गये और वहां जा-

कर मुनियोंके मनके समान कोमल निर्मल सेजपर स्थित हो अपने चिरकालीन वियोगसे संतप्त हृदयको शीतल करनेका उपाय करने लगे।

लज्जासे चंचल, अतुल प्रेमके भारसे मुग्ध, गाढ उत्कंठावाले, रतिरसके वश हुये, कौतुकसे कंपित चित्तवाले इस नव युगलको मुखपर मुखरख आनंदसे निद्रालेते हुये जब समस्त रात्रि ही बीत गई तो पूर्व दिशाके कुंकुम भूषणके समान, रात्रिरूपी अंगनाके विस्मृत लोहित कमलके समान, कामरूपी महाराजके रक्त छत्रके समान, अंधकारनाशक चक्रके समान, और आकाशरूपी स्त्रीके मांगल्यकलशके समान मालूम होता हुआ सूर्यमंडल आकाशमें स्पष्टरीतिसे दृष्टिगोचर होगया।

इसप्रकार श्रीमद्-आचार्य गुणभद्रभदंतविरचित संस्कृत जिनदत्तचरित्रके भावानुवादमें द्वितीय सर्ग समाप्त हुआ ॥ २ ॥

तृतीय सर्ग।

अपनी प्यारी विमलाके साथ नाना प्रकारकी केलिक्रीडायें करते करते जब बहुत दिन बीत गये तो एक दिन जिनदत्त अवसर देखकर अपने श्वशुरसे बोले—

"पूज्य ! मुझे यहां रहते अधिक दिन हो गये हैं। मेरे माता पिता मेरे आनेकी आशा करते होंगे इसलिये आपसे प्रार्थना है कि मुझे यहांसे घर जानेकी आज्ञा दे कृतार्थ करें।"

जामाताकी उक्त प्रार्थना सुन सेठ विमलचंद्रको यद्यपि

बहुत दुःख हुआ तो भी जिनदत्तका अपने घर जाना उचित समझ उन्होंने कहा—

"प्यारे पुत्र ! यद्यपि तुम्हारा वियोग असह्य है । उससे मुझे ही नहीं किंतु अन्य तुम्हारे संबंधियोंको भी दुःख होगा इसलिये तुम्हें यहांसे जानेकी आज्ञा देनेको चित्त नहि चाहता तो भी यहां अधिक रहनेसे तुम्हारे माता पिताके दुःखी होनेका डर है इसलिये तुम्हें रोकना भी अनुचित है ।"

श्वशुरकी आज्ञा पाकर जिनदत्त अति प्रसन्न हुये और नियत मितिपर अपने श्वशुरद्वारा दिये गये दासी दास सवारी आदि परिकरसे वेष्टित हो घरकी तरफ चलनेकी तयारियां करने लगे । जिनदत्त जिससमय रवाना हुये तो ग्रामके वाहिर उद्यानतक इनके श्वशुर सासु आदि संबंधी लोग भी आये और वहां जिनेंद्र भगवानका अभिषेक पूजन कर जब धार्मिक शुभ कार्योंसे निवृत्त हो गये और वहांसे प्रयाण करानेका समय समीप आया तो विमलाके पिता सेठ विमलचंद्र अपनी पुत्रीके शिरमें प्यार करके बोले—

"पुत्री विमला ! आज तू अपने पिताके घरसे अपने पति के घर जा रही है । यहां जो कुछ भी तू क्रूरता, दुर्जनता और चपलता आदि दोष करती थी वे सब तेरे लड़कपनमें संभाल लिये जाते थे परंतु तू बधू बनकर जा रही है इस- लिये इन्हें तू सर्वथा छोड़ देना । इनकी तरफ तू कभी अपना चित्त भी मत ले जाना । यदि इस शिक्षाके अनुसार न चल कर तेने विपरीत किया तो प्यारी बेटी ! तू अपने समस्त कुटुंबियोंकेलिये विषबेलिके समान दुःखदायिनी गिनी जा-

यगी । तेरेसे सुखी होनेके बदले तेरे सासु श्वशुर तुझसे दुःख पावेंगे और तुझे अपने घरका कंटक समझेंगे । इसलिये तू इस बातका अवश्यही ध्यान रखना ।

तेरेलिये इसके सिवा एक यह भी कर्तव्य है कि जिसप्रकार तेरा पति तुझे रक्खे उसी अवस्थामें तू संतोष रखना। सर्वदा छायाके समान अपने पतिकी अनुगामिनी होना। जो कुछ तेरा पति कहे उसे तू अवश्य ही करना। पतिके दुःखमें दुःख और सुखमें सुख मानना, अपने चित्तको कभी भी बुरी बातोंकी तरफ न ले जाना । सर्वदा चित्त पतिभक्ति, जिनपूजन, गुरुसत्कार आदि श्रेष्ठ कार्योंमें ही लगाते रहना और धार्मिक कर्त्तव्यको अपना प्रधान लक्ष्य समझना। ऐसा करनेसे ही तू अपने वंशकी भूषण पताकाके समान प्रशस्त गिनी जायगी और समस्त कुटुंबियोंकी प्रीतिभाजन हो सकेगी।"

जब इसप्रकार सेठ विमलचंद्र अपनी प्यारी पुत्रीको शिक्षा दे चुके तो उनकी पत्नी भी विमलाको छातीसे चिपटाकर और आखोंमें प्रेमाश्रुका पूर भर कर बोली—

"मेरी प्यारी पुत्री ! तुझे मैने छोटेसे पाल पोषकर बडा किया है और अब तुझे तेरे श्वशुरके घर भेजे देती हूं। आजसे तेरा जीवन दूसरे ही ढंगका होगा। तू वहां जाकर अपने पतिके सिवाय हर एकसे हास विलास मत करना। किसीसे अधिक बात चीत कर अपना लडकपन प्रकट न करना । अन्यके साथ एक आसनपर मत बैठना। अधिक माल्य विभूषणकी तरफ अपना चित्त न लगाना और सबके साथ जहां कहीं गमनागमन भी मत करना।

जिससमय अपने पतिका मन प्रफुल्लित देखना उसी समय मान करना और वह भी अधिक देरकेलिये न कर अल्पकाल तक ही करना जिससे कि तेरे पतिके मनमें किसी प्रकारकी भ्रांति न पैदा हो।

हम लोगोंके वियोगमें तू अधिक दुःखित न होना और यहां आनेकी तरफ अधिक उत्कंठा न दिखलाना।

अपने ज्येठ देवर सासु श्वसुर, दोरानी जिठानी और नंद प्रभृतिमें सर्वदा अपनी नम्रता दिखलाना। ऐसा कोई भी असंबद्ध हास्यादिक न करना जिससे कि वे रुष्ट हो जांय और उन्हें दुःख प्राप्त हो।

तू अपनी सासुको मा कहकर पुकारना, श्वसुरको तात कहना, प्राणनाथ (पति) को प्रियेश शब्दसे संबोधन करना और देवरको सुत कहकर बोलना एवं उन्हें तू उसीप्रकार समझना।

प्यारी बेटी! तू किसी वस्तुकेलिये अपनी लालसा प्रकट न करना। मैं यहांसे सैकडों और हजारों बढियांसे बढिया वस्तुयें तेरे लिये भेज दिया करूंगी। तू उनसे ही अपना मन संतुष्ट रखना।"

जब इसप्रकार सेठ और सेठानी अपनी पुत्रीको शिक्षा दे चुके तो जिनदत्तने उन्हें प्रणाम किया और घर लौट जानेके लिये साग्रह प्रार्थना कर अपने नगरकी ओर प्रस्थान किया।

जिनदत्त क्रम क्रमसे मार्गमें पड़ाव डालते अपने जन्म-स्थान वसंतपुर आ पहुंचे। इनके आगमनकी सूचना पाकर इनके पिता सेठ जीवदेव इन्हें लेनेकेलिये गांवके बाहिर आये और

बडे ठाठ बाटसे रतिसहित कामदेवके समान सुशोभित हो-नेवाले इनको वधू सहित नगरमें प्रवेश कराया।

'विवाह कर बधूसहित जिनदत्त आये हैं।' यह समाचार ज्योंही नगरमें फैला नगरकी समस्त स्त्रियोंमें खल बली मच गई। वे जिनदत्त और उसकी वधूको देखनेकेलिये लालायित हो अपने अपने काम काज छोड मकानोंकी छतोंपर चढने लगीं। जो स्त्री उससमय भूषण पहन रही थी वह तो अपने भूषणोंको यथास्थान न पहिन यों ही चलदी। जो कज्जल ल-गारही थी वह उसे नेत्रोंमें न लगा अन्य स्थलपर ही लगाकर दौडदी। जो बच्चेको दूध पिलारही थी वह उसे पूरा न पिला रोता ही छोड भागदी। जो स्त्रियां कौतूहलसे इस उत्सवको देखरहीं थी उन्हें अपने तन बदनकी भी सुध न थी। किसीका स्तन खुला था और उसे देखनेवाले हास्यपूर्ण दृष्टिसे देख रहे थे, किसीका डोरा टूट जानेसे गलेका हार ही बिखर गया था और उसकी वह कुछ भी पर्वा न कर रही थी। कोई अपने नेत्र कटाक्षोंसे उसे विद्ध करनेका उद्योग कर रही थी तो कोई उसके रूपपर आसक्त हो मनमें कामसंतापसे संतप्त हो रही थी। कोई यदि उन वर बधूओंको धन्य धन्य कह रही थी तो कोई उन्हें काम और रतिके युग्मकी उपमा दे रही थी। कोई यदि जिनदत्तकी प्रशंसा करनेमें तत्पर थी तो कोई 'यह चिरं-जीविनी हो विघ्नरहित सुखका इसपतिके साथ बहुत दिनोंतक भोग करै' इत्यादि आशीर्वाद पढ अपना मन संतुष्ट कर रही थी। इसप्रकार स्त्रियोंके समुदायको सर्व प्रकारसे आकुलित और वाचाल करते हुये ये वर बधू अपने घर आये और गो-

नकी वृद्धा स्त्रियोंद्वारा पूरे गये चौक पर थोडी देर बैठकर जिनेंद्रकी पूजापूर्वक मांगल्य विधिको ग्रहण करते हुये सुखसे रहने लगे।

हमारे चरितनायक इसप्रकार सर्वथा गृहस्थाश्रममें प्रविष्ट हो गृहस्थके योग्य क्रियाओंके करनेमें दत्तचित्त रहने लगे। जिसप्रकार इन्होंने अपने शैशवमें विलक्षण और अद्भुत क्रीडायें कर कुटुंबियोंको प्रसन्न किया था, जिसप्रकार पठनावस्थामें शीघ्रतापूर्वक समस्त विद्याओंको उपार्जन कर संसारको चकित किया था उसीप्रकार युवावस्थामें धर्म अर्थ और काम इन तीनों पुरुषार्थोंको अव्याहत रीतिसे पालते हुये इन्होंनें लोकमें अपना शुभ्र यश विस्तृत करदिया। यह समय इनके पंचेंद्रिय विषय भोगनेका और उनके साथ यथायोग्य धर्म पालनेका था। उसीके अनुसार इन्होंने समस्त सुख भोगना शुरू करदिया और सुखकी वर्षें घडियोंके समान निकल जाती हैं इस कहावतके अनुसार इन्हें भी वे दिनपर दिन निकलने लगे। जो याचक इनके द्वारपर आता उसे ये इच्छानुसार दान देते। जो महात्मा इनके घर आते उनका विनयावनत हो सत्कार करते और जो निर्बल पुरुष इनकी सहायता चाहता उसे सर्वप्रकार सहायता देते। ये समयविभागपूर्वक अपनी नित्य क्रियायें करते। प्रातःकाल जिनमंदिरमें जा भगवानकी पूंजन करते, और शास्त्र पढते। मध्याह्नमें वहांसे आकर संयमियोंको दान देकर स्वयं भोजन करते और भोगसेवनके समय भोगोंका सेवन करते।

इसप्रकार परस्पर अव्याघात रूपसे तीनों पुरुषार्थोंका से-

धन करते हुये इनके सुखसे दिन व्यतीत हो ही रहे थे कि एक दिन अचानक ही इनके शिरमें पीडा होने लगी। इस पीडासे अब इनका किसी कार्यमें मन न लगने लगा तो इनके मित्रोंने इनके विनोदार्थ अधीश पदाति, हस्ति और घोडोंका परस्परमें युद्ध कराना शुरू किया। यह युद्ध स्पर्धासे किया गया था। इसमें हारने वालेको जीतनेवालेसे बाजी माननी पडती थी और कुछ धन आदि भी अर्पण करना पडता था। जब इस क्रीडामें हमारे चरित नायक का चित्त लग गया और उससे उनकी कुछ प्रसन्नता देखी तो कुछ धनलंपटी धूर्तोंने जुआ खेलना प्रारंभ कर दिया और वे लोग ज्यों २ इनकी अभिरुचि देखते गये त्यों त्यों अधिकाधिक खेलते गये।

बुरी बातोंमें मन बहुत जल्दी लग जाता है और उनके उत्तेजक भी जगह जगह मिल जाया करते हैं इसलिये जुआरियोंका जुआ देखते देखते इनका मन भी उसके खेलने में फस गया। ये भी बाजीपर बाजी लगाने लगे। इनके धन की तो कुछ कमी थी ही नहीं जो हारते हुये दुःख होना और ऐसे खिलाडी नहीं थे जो जीतकर न हारते इसलिये धीरे धीरे इन्होंने अपना समस्त धन स्वाहा करना शुरू कर दिया। सौ पचास सैकडे दो सैकडे या हजार दो हजार रुपयोंकी तो क्या बात? इन्होंने अपनी ग्यारह करोड मुद्रायें ऐसी छुपके खेलनेमें हारकर जुआरियोंको दे डालीं।

जब कुमार जिनदत्तकी आज्ञासे नौकरोंपर नौकर आना शुरू हुये और धनपर धन खर्च होना प्रारंभ हुआ तो इनके पिताके खजांचीको यह बात सह्य न हुई। उसे इस बातका

पूरा पता लग गया कि इतना धन सिवाय किसी दुष्कर्मके अन्य कार्यमें इतना जल्दी नहि खर्च हो सक्ता इसलिये और अधिक धन देना उसने उचित न समझा एवं जिनदत्तके आज्ञाकारियोंको धन देनेकी स्पष्ट मनाई कर दी। जब पिताके खजानेसे धन मिलना बंद हो गया और जुआ खेलनेका शौक कुछ कम न हुआ तो जिनदत्तने अपनी स्त्रीके खजानेसे धन मगाना शुरू किया और उससे आये हुए भी सात करोड दीनार हार कर खो दिये।

स्त्रीके खजानचीने भी जब यह सब बात देखी और कुछ भीतरी हाल मालूम हुआ तो नौकरोंको उसने भी धन देनेकी साफ मनाई कर दी। अब तो जिनदत्तके याचकोंको गहरी चोट लगी। जब पिताके खजानचीने मनाई करदी थी तब तो उनको स्त्रीके खजानेसे धन मिलना प्रारंभ हो गया था इसलिये कुछ दुःख न हुआ था। और अब स्त्रीके खजानेसे भी कोरा जवाब मिल गया तो अन्य धनागमकी प्रातिका कारण न होने से इन्हें बडी पीडा हुई। उन्होंने आकर अपने आज्ञापक जिनदत्तसे कही और उन्होंने ज्योंही यह समाचार सुना उनका मुख पालेसे सताये गये कमलके समान मुरझा गया। थोडी देर पहिले जो द्यूतक्रीडासे उनके मुखपर कुछ खुशी और हंसीकी रेखायें झलक रहीं थी वे सर्वथा विला गईं और उसपर चिंताका गहरा साम्राज्य छा गया।

विद्वत्ता एक न एक दिन अपना अवश्य असर दिखाती है। विद्वान् मनुष्य चाहै कैसे भी बुरे व्यसनमें फंस जाय अवश्य ही किसी निमित्तके मिलनेसे सुधर जाता है। हमारे

चरित्रनायक जो द्यूतक्रीडारूपी व्यसनमें फंस गये थे। जिसके कारण अपने पिता और स्त्रीके अपरिमित धनको खो-देनेसे उनके खजांचियों द्वारा आज्ञाभंगपूर्वक अपमानित हुये थे। वे ही अब मानभंग होनेके कारण सुधर गये। चिंता-में व्यस्त होनेके कारण उन्होंने द्यूत तो उससमय बंद कर-दिया और इसप्रकार मनमें विचारने लगे-

'जो लोग अपनी भुजाओंसे द्रव्य उपार्जन करते हैं, जिनको उसकी कृपासे सर्वप्रकारके सांसारिक सुख उपलब्ध हैं और जो किसीके मानभंगसूचक शब्दोंसे कभी प्रतिहत नहिं होते वे लोग संसारमें धन्य हैं-उनका ही जीवन प्रशंसाके योग्य है उनसे भिन्न जो दूसरे लोगोंके द्वारा पैदा किये गये धनसे पलते हैं पुष्ट होते हैं। उनके बराबर हीन निकृष्ट कोई भी नहीं है। वे लोग पद पदपर तिरस्कृत होते हैं। देखो! कोयल परपुष्ट-काकसे पुष्टकी जाती है इसीलिये वह उनके चोंचोंके घातोंसे वार वार कदर्थित होती है। इसके विपरीत सिंह अपने पराक्रमसे उपार्जित द्रव्यसे बलवान् होता है इस लिये उसे कोई आंख उठाकर भी नहिं देख सक्ता। मैं अपने उपार्जितद्रव्यसे द्यूत न खेल पिताके द्रव्यसे खेल रहा था इसीलिये मेरी यह दशा हुई है। मुझे जो खजानची सरीखे क्षुद्र पुरुषसे अपमानित होना पड़ा है उसमें सर्वप्रधान यही कारण है। यदि मैं अपने हाथसे पैदा किये गये द्रव्यसे खेल खेलता तो इसकी तो क्या मजाल? इससे अधिक उच्च अधि-कारी भी मुझसे आधी बात भी न कहता और विना कुछ कहे सुने ही मेरी आज्ञा पालन करनेपर उतारू हो जाता।

परंतु यह सब कुछ नहिं हैं इसीलिये ऐसा यह मौका आया है।

मेरे पिताकी यद्यपि यह इच्छा नहिं हैं। वे मुझसे कुछ द्रव्य उपार्जन नहि कराना चाहते और इसीलिये उनकी आज्ञा से समस्त मनोरथ पूर्ण भी होते रहते हैं परंतु तो भी यह अपमान मेरे मनको अधिक खेदखिन्न कर रहा है। जो लोग उन्नत मनवाले मनस्वी होते हैं। वे जिसप्रकार गुरु पत्नीका कभी भोग नहि करते उसीप्रकार अपने पूर्व पुरुषों द्वारा उपार्जनकी गई लक्ष्मीका भी भोग नहि करते वे गुरुपत्नी सेवनके समान उसके सेवन करनेमें भी पाप समझते हैं। सज्जन लोग जो पुत्र आदिकको अपने द्वारा तन मनसे उपार्जन किये गये धनसे सर्व प्रकार पोषण करना योग्य बतलाते हैं उसमें संतानका किसीप्रकार पाल पोषकर बढा कर देना ही हेतु है। जिसप्रकार नवीन सूर्यके उदयसे कमल खिल जाते हैं उसीप्रकार जिस पुरुषके उत्पन्न होनेसे उसके सम्यक् चारित्रसें कुटुंबियोंके मन प्रफुल्लित न हुये उस मनुष्य का वह जीवन वह चारित्र किस कामका ? उससे उसके कुटुंबियोंको सिवाय दुःख होनेके कोई फल नहि होता। हाय ! मैंने द्यूत सरीखे निंद्यकर्ममें अपना मन लगा बडा ही अनर्थ किया है। इसके बराबर मुझे इससमय कोई भी बुरा कार्य नहि दीख रहा है। इस कार्यके करनेसे मैं अपने पिताको किसीप्रकार अपना मुंह दिखलाने योग्य नहि हूं।

संसारमें एक वे ही लोग तो धन्य हैं और वे ही जीवित समझनेके योग्य हैं जिन्होंने अपने जन्ममें कभी भी मानभंगके दुःखसे दुःख नहि उठाया। जो द्रव्य नियत समयपर मिल

सा है--आवश्यकताके समय न मिलकर जो दाताकी इच्छासे मिलता है, जो विना याचनाके प्राप्त न होकर याचनासे ही प्राप्त होता है, और जो दुःखपूर्वक यथाकथंचित् मिलता है वह सब तात्कालिक इच्छाकी पूर्तिका कारण न होनेसे अदत्त (विना दिये हुये) के समान गिना जाता है । और उसके लेनेमें चोरी करनेके वरावर दुःख उठाना पड़ता है। जिन लोगोंको धन देनेका वचन देकर भी धन नहिं दिया जाता वे लोग सेवकके समान हैं । जिसप्रकार कोई अपने नौकरोंके मान अपमानका ख्याल नहिं करता उसीप्रकार उनके भी मानापमानका कोई ध्यान नहिं रखता।

यह मनुष्य संसारमें तब ही तक तो प्रशंसनीय है, तब ही तक सुमेरु पर्वतका शिखरके समान उच्च है और तब ही तक कीर्तिशाली है जब तक तक कि यह किसीके सामने अपने दीन वचन नहिं बोलता--किसी चीजकी याचना नहिं करता।

विना धनके इस संसारमें अच्छेसे अच्छे काम भी शोभित नहिं होते। जिसप्रकार वृद्धा वेश्या चाहें कितना भी गहना पहिन ले और बढियासे बढिया वस्त्र ओढले परंतु यौवनके विना उसकी कोई शोभा नहिं होती उसीप्रकार निर्धन गृहस्थ चाहें कैसी भी वढिया क्रिया करे, धनके विना वह कभी लोकमें प्रशंसित नहिं होती। इसलिये अब मुझे इन मेरे पिता द्वारा उपार्जन किये गये धनसे कोई काम नहिं है वह मुझे ढेलेके समान है । मै कहीं परदेशमें जाकर अवश्य ही उत्तम धन पैदा करूंगा । यह जो मेरे साथ मेरी अर्द्धांगिनी धर्मपत्नी है उसे तो इसके पिताके घर रख आऊंगा और मै

सन मन लगाकर निर्मल-निर्दोष लक्ष्मीके उपार्जन करनेका उद्योग करूंगा।"

यद्यपि मनस्वी जिनदत्त इसप्रकारके सद्भावोंसे प्रेरित हो अपने मनकी बात मनमें ही छिपाकर रखने लगे तो भी उनके इस वृत्तांतका पता इनके पिताको किसी न किसी प्रकार लग गया और उन्होंने इन्हें अपने पास बुला भेजा। पिताकी आज्ञानुसार जब जिनदत्त इनके पास आये तो वे इसप्रकार कहने लगे—

"प्यारे पुत्र! यद्यपि तुमने मुझसे कोई बात नहिं कही है तो भी मैंने जो तुम्हारे साथ कोषाध्यक्षने बर्ताव किया है उसको यथावत् सुन लिया है। उसे सुनकर मैंने सैकड़ों और हजारों धिक्कारें खजानचीको दी हैं। इसमें कुछ भी मिथ्या नहिं है मैं तुम्हारे शिरपर हाथ रखकर, शपथ खाता हूं मैं जो कुछ भी तुमसे कह रहा हूं वह अक्षरशः सत्य है। अब तुम खेद छोड दो। तुम्हारी इच्छा हो उसे अच्छी तरह पूरी करो। इस धन धान्य आदि संपत्तिपर मेरा जो अधिकार तुम समझ रहे हो वह नाममात्रका है। इस समस्तके तुमही अधिकारी हो। तुम्हें जो अच्छा लगे वह इसका कर सकते हो। मेरे आंखोंके तारे लाल! यह समस्त विनोद तुम्हारे सरीखे विद्वान कुलीन पुरुष को शोभित नहिं होता। लक्ष्मीका अच्छा और बुरा दोनों प्रकारसे उपयोग हो सकता है. परंतु अच्छा उपयोग करना ही मनुष्यको उचित है। जिन्होंने इसका जुआ आदिमें बुरा उपयोग किया है उन्होंने जो जो पाप उपार्जित किये हैं जो जो कष्ट भोगे हैं उन सबका इति-

हास तुम्हें मालूम ही है उसके यहां अधिक कहनेकी कोई आवश्यकता नहि है । इस लिये यदि तुम्हें इसका उपयोग करना ही अभीष्ट है तो तुम विशाल जिनेंद्र भगवानके मंदिर बनवाओ, उनमें सुवर्ण, रूप्य और रत्नोंकी निर्मित मूर्तियां स्थापित करो, राति दिन जिनेंद्र भगवानकी गाजे बाजेके साथ पूजा करो, श्रावक श्रविका मुनि अर्यिका रूप चारो संघोंको यथाविधि दान दो । मुनियोंके लिये सिद्धांत, न्याय साहित्य, व्याकरण आदि विद्यायोंके शास्त्र लिखा लिखाकर भेंटमें अर्पण करो, कुए, बावडी तलाब आदि खुदाओ और विचित्र विचित्र बाग बगीचे लगवाओ, इनके करनेसे तुम्हारी जगद्व्यापिनी कीर्ति होगी, पुण्य प्राप्त होगा और तुम्हारा मन भी रंजित होगा ।"

पिताका यह उपदेश यद्यपि यथार्थ और हितकर था तो भी जिसप्रकार मुनिके मनमें विलासिनी स्त्रीका प्रवेश नहि होता उसी प्रकार वह पुत्र जिनदत्तके मनमें नहि समाया । उन्होंने अपने विचारोंकी तरंगोंमें उसपर कुछ भी ध्यान न दिया । उन्होने नीचे मुंह कर जो कुछ भी सुना उसका पिता को 'हां' के रूपमें उत्तर दे टाल दिया और प्रणमकर वहांसे उठ सीधे अपनी कांताके पास आये ।

विमला पतिकी परिचर्याकरनेमें बडी ही चतुर थी उसे शास्त्रोक्त और लौकिक पतिके प्रति पत्नीके समस्त कर्तव्य मालूम थे इसलिय ज्योंही उसने अपने वासस्थान आये हुये पतिको देखा त्योंही अभ्युत्थान आदिसे यथायोग्य सत्कार किया और उनके मनोगत भावको समझकर विलास आदिसे मनमें

प्रफुल्लताका संचार करनेका उद्योग करने लगी। जब अधिक बात चीत हुई और अपने पतिका चित्त उसने यथावत् प्रकृतिस्थ न देखा तो यह सोचकर कि शायद अपने श्वसुरके घर पहुंचकर ये प्रकृतिस्थ हो जांयगे उनसे बोली—

"प्यारे आर्यपुत्र! आज मेरे पिताके घरसे आप और मुझ दोनोंको शीघ्र बुलानेका समाचार आया है। कहिये! इसमें आपकी क्या सम्मति है? जो उचित समझें वह करें।"

जिनदत्तने जब अपनी प्यारीके मुखसे यह समाचार सुना तो उन्होंने भी अपने अभीष्टको सिद्ध होना देखा और इसी बहाने इसको इसके पिताके घर पहुंचादेना भी हो जायगा यह बात सोची तो उन्होंने उत्तर दिया—

"क्या हर्ज है! जैसी तुम्हारे पिताकी इच्छा है वह हमें भी मान्य है" इसप्रकार जब उन दोनों पतिपत्नियोंकी सम्मति होगई तो जिनदत्तने अपने पिताकी सम्मति लेना भी उचित समझा। सेठ जीवदेवने जब यह बात सुनी तो उन्होंने भी यह सोचकरकि पुत्रकी प्रकृति वहां जानेसे ठीक हो जायगी आज्ञा देदी।

पिताकी आज्ञा और अपनी इच्छा होनेसे जिनदत्त पत्नी विमलाके साथ चंपापुरीकी तरफ रवाना होगये और यथासमय वहां जा पहुंचे।

सेठ विमलचंद्रको जिनदत्तके मन उद्विग्न होनेका कारण पहिलेसे ही मालूम हो चुका था इसलिये उन्होंने अपने जामाताका बड़ा ही सत्कार किया और स्वागतपूर्वक अपने घर लेजाकर उन्हें प्रीतिसे ठहराया।

चंपापुरीमें उससमय प्रमद नामका एक बगीचा था उसमें विशाल विशाल काम मंदिर बने थे। सुंदर कर्णप्रिय शब्द करनेवाले भ्रमरोंके समूहसे वेष्टित अनेक तोरण शोभित हो रहे थे, मंद मंद सुगंधित पवन अपने वेगसे कामिनियोंके केशोंको चंचल करता था, सुगंधित पुष्पोंके आमोदसे कोकिलायें मस्त हो जाती थीं, अनेक फलोंके भारसे वृक्ष नम्र हो रहे थे और क्रीडापर्वत, वापी, वल्ली आदि मनको हरण करनेवाले थे इसलिये यह उद्यान उससमय सर्वप्रकारसे समस्त इंद्रियोंको सुखदायक मालूम पडता था।

हमारे चरितनायकको अपने श्वशुरके घर आये अभी पांच ही दिन बीते थे कि ये इसी उद्यानमें अपनी कांताके साथ क्रीडा करनेकेलिये चलदिये और वहां बहुत देरतक क्रीडा करते रहे। इस उद्यानमें नाना तरहकी वनस्पतियां थीं। क्रीडा करते करते इनकी दृष्टि एक वनस्पतिपर जा पडी। इसमें जो कोई इसे धारण करले उसे ही अदृश्य करदेनेका गुण था। यह देख सहसा इनके मनमें यह कल्पना उठखडी हुई कि—

"यद्यपि मुझे यहां किसीप्रकारकी कोई तकलीफ नहीं है सब प्रकारसे सब तरहके सुख ही सुख मिलरहे हैं तो भी अपने घरको छोड श्वशुरके घर रहना सर्वथा अनुचित है। और अपने घर भी मानभंग होनेसे जानेको जी नहि चाहता। यदि मैं कहीं जानेका भी चित्त करूं तो साथमें इस प्यारी कांताको लेजाना उचित नहि है और यहां छोडनेसे यह मेरे वियोगको न सह सकेगी इसलिये बडी कठिन समस्या आपडी है। परंतु यह सब होते हुये भी मैं अपने धन उपार्जन करनेके उद्देश्यको

नहि भूलसका। इसके सिद्ध करनेमें मुझे कितनी भी कठि-नाइयां झेलनी पडें सब मंजूर हैं। इसलिये पूर्वापर विचार-नेसे घरजाने, यहां रहने और इसको साथ ले चलनेकी अ-पेक्षा यही उत्तम है कि इसको यहां ही छोड दिया जाय और इस औषधिके प्रभावसे अंतर्हित हो कहींको चल दिया जाय। जबतक लक्ष्मी मेरे अधीन न होगी, जबतक मैं अधिक धनाढ्य न होऊंगा तबतक ये भोगे गये विषय विषके समान ही भयं-कर मालूम पडेंगे इसलिये लक्ष्मीके वश करनेकेलिये समस्त दुःख सहलेना भी योग्य हैं।

ज्योंही यह विचार मनस्वी जिनदत्तने हृदयमें निश्चित किया त्योंही उन्होंने वह औषधि लेली और अपनी शिखामें उसे बांध अंतर्हित हो कहींको चल दिये।

जिनदत्तको न आये जब बहुत देर हो गई और उनके आनेकी आशा सर्वथा जाती रही तो विमलाको बड़ा ही दुःख हुआ। वह उनके वियोगसे व्याकुल हो समस्त दिशाओं विदिशाओंमें आशाभरी दृष्टिसे देखने लगी और चक्रवाकसे विहीन चकवा-कीके समान फूट फूटकर रो इसप्रकार विलाप करने लगी-

"हाय ! मेरे जीवनाधार नाथ ! ऐ मेरे हृदय मंदिरके आराध्य देव ! हा ! स्वाभाविकप्रेमके भंडार आर्यपुत्र ! आप कहां चले गये। मैंने ऐसा कौनसा अपराध किया जिससे रुष्ट हो मुझे आपने छोड दिया। नहीं ! नहीं ! आप ऐसे कठोर तो न थे अवश्य ही इससमय आप मेरे साथ हंसी कर रहे हैं। प्राणनाथ ! कृपाकर अब आप शीघ्र ही आइये। बहुत हँसी हो चुकी अब और अधिक वह नहीं सही जाती। विना विलं-

करके मुझे अपना मुखचंद्र दिखा प्रफुल्लित कीजिये। मेरा मन मक्खनके समान कोमल है, वह इससमय आपके विरहरूपी अग्निसे तपाया जारहा है यदि सर्वथा वह विलीन ही हो गया तब फिर आपका आना ही किस कामका होगा-आप आकर ही क्या करेंगे इसलिये प्राणनाथ! आइये, शीघ्र आइये और इस संतप्त करनेवाली विरहाग्निको अपने संयोगरूपी जलसे बुझाकर शीघ्र शांत कीजिये। हाय! ये वे ही लतायें हैं वेही वृक्ष हैं, वेही क्रीड़ा पर्वत हैं, और वेही पक्षी हैं परंतु केवल मेरे प्राणनाथ ही नहि हैं न जाने कहां मेरी दृष्टिको धोखा दे चले गये। हे प्रभो! आपको मेरा बड़ा ही स्नेह था, बड़ी ही मुझमें प्रीति थी, मुझे बहुत ही अच्छा मानते थे। किसी कारण वश मेरे रुष्ट होजानेपर आप सैकड़ों चाटु वचन कहा करते थे। परंतु हा! आज क्या आप ऐसे स्नेहहीन कठोर होगये अथवा मुझे दोषपूर्ण समझने लगे जो मेरे बार बार रोनेपर, पछाड़ खा खाकर गिरनेपर भी आपका हृदय नहि पसीजता। उसमें स्नेहकी तरंग नहि उठती जो मुझे और नहीं तो कमसे कम एक वचन तकका भी दान नहि देते। हाय! आज वे आपके चाटुकार, वे आपके विभ्रम और वे आपके कौशल कहां चले गये? आपके विना मुझे अपना कोई नहि दीख रहा है, आप मुझको समय समयपर धैर्य दिलाते थे, आप मेरे मनकुसुमको विकसित करते थे। परंतु अब आपके यहां न रहनेसे मैं रात्रिमें सूर्यके विना कमलिनीके समान शोकग्रस्त होगई हूं। मुझे प्रफुल्लित करनेवाला अब कोई भी नहीं है। न जाने मेरा वह आपके साथ संयोगवाला शुभदिन कब होगा? नहि नहि!

मैं भूल रही हूं! मैं जो कुछ भी इससमय कह गई हूं सब मिथ्या है हा! मैं बडी ही मूर्खा हूं मैं अपने पापको और भी अपने पतिकी स्नेहहीन आदि शब्दोंसे निंदाकर बढारही हूं। नहीं! मेरे पति मेरे सर्वगुण पारंगत प्राणनाथ कभी ऐसे नहि है और न हो सकते हैं वे बडे ही दयालु हैं मुझे स्वयं कभी नहि छोड सके और न इसप्रकार दुःखित अवस्थामें ही मुझे देख सकते हैं। अवश्य ही उन्हें किसी न किसीने हरलिया है और वह हरनेवाला कोई नहि है मेरा पूर्वकृत कर्म ही है क्योंकि मैंने अवश्य ही पूर्वभवमें किसी न किसी परस्पर अभिनप्रेम करनेवाले युगलको वियुक्त किया है नहि तो क्या आज मेरी यह दशा होती। जीवोंको अपने कृत कर्मानुसार ही फल मिला करता है। यह जो मुझे प्रियवियोगजन्य दुःख मिला है उसमें मेरा पूर्व संचित कर्म ही कारण है।

हा! स्त्री पर्याय बडी ही खराब है। इसमें महान दुःख हैं। इसके समान निंद्य कोई पर्याय नहीं। इसमें मेरा अब कभी जन्म न हो और यदि किसीप्रकार हो ही जाय तो कभी इसमें प्रियवियोगका अवसर न आवे। संसारमें प्रियवियोग-के समान कोई पदार्थ दुःखद नहि हैं। इसलिये इसका न होना ही अच्छा है।

अयि वनदेवताओ! मुझपर दयाकरो। मेरी दीन प्रार्थ-नाकी तरफ टुक ध्यान देओ। मुझे पतिदर्शन दे मेरा उद्धार करो। मैं शोकसागरमें डूबी जा रही हूं। मेरी इस अवस्था पर क्या आपको करुणा नहि आती? मेरा इससमय सहा-यक कोई नहि हैं। दीन दुखिया निःसहायका सहाय करना आपका कर्तव्य है।"

हमारे चरितनायककी अर्द्धांगिनी विमला जब उनके वियोगमें अतिविह्वल हो गई और सखियोंके बहुत प्रकार समझानेपर भी शांत न हुई तो सखियां उसे जिस किसी तरह उसके पिताके पास लाई और पिता भी समस्त वृत्तांत जान कर उसे इसप्रकार धैर्यपूर्वक समझाने लगे—

" पुत्री विमला ! भाग्यमें जो होता है वही हमारे तुम्हारे सबके भोगनेमें भी आता है । तुझे इससमय जो पतिवियोग का दुःख भोगना पडा है उसमें तेरा पूर्व कृत अशुभ कर्म ही कारण है । अशुभ कर्मके होनेसे ही दुःख उठाने पडते हैं । सुखकी इच्छा करनेवालोंको अशुभ कर्मका नाश और शुभ कर्मका करना ही श्रेष्ठ है । शोक करनेसे अशुभ कर्मका बंध होता है इसलिये प्यारी पुत्री ! तू शोक को सर्वथा छोड दे । यदि तेरे भाग्यमें होगा तो तुझे फिर पतिसंयोग मिलेगा । इसलिये इससमय पूर्व अशुभ कर्मकी शांति एवं आगामी शुभ कर्मकी प्राप्तिकेलिये जिनेंद्र भगवानके मंदिरमें रह कर धर्म उपार्जनकर । श्रेष्ठ श्रेष्ठ आर्यकाओंके साथ संगति कर । अपनी सखियोंके साथ धर्मकी चर्चा करना प्रारंभ कर और पात्रदान आदि भी किया कर । हम लोग तेरे पति की तलाशमें हैं यदि वे कहीं मिल जांयगे तो अवश्य ही उनका तेरे साथ संयोग होगा ।"

पिता विमलचंद्रका जब पुत्री विमलाने यह सांत्वना भरा उपदेश सुना और उसकी यथार्थता समझी तो जिस किसी तरह धैर्य धारण किया और जिनपूजा, शास्त्रपठन, सदुपदेशश्रवण, वैयावृत्यकरण आदि शुभ क्रियाओंमें अपना चित्त लगा रहने लगी ।

जिनदत्तके पिता और श्वशुरके पुरुषोंने जब उनकी खोज करना प्रारंभकी और कहीं पता न पाया तो वे भी विचारे मान साध कर भाग्यके भरोसे रहने लगे।

हमारे चरित्रनायक औषधिके प्रभावसे अदृश्य हो चलते चलते दधिपुर नामक नगर पहुंचे और वहां एक बाहिर के विशाल बगीचेमें जा ठहर गये। यह बगीचा फल पुष्पोंसे हरा भरा न था, इसमें यद्यपि जलसेक आदिके चिन्ह दिखलाई पड रहे थे तो भी केवल वृक्षोंके ठंठमात्र ही खड़े थे। जब यह सब चरित्र जिनदत्तने देखा तो ये उसकी इस दशा के कारणका विचार करने लगे और अपनी ऊहापोहसे अपनी शंकाओंका उत्तर अपने आप देते हुये वास्तविक तत्त्व को जाननेकी चेष्टा करने लगे।

जिस समय ये इस बातका निश्चय कर रहे थे उसीसमय कुछ पदाति (प्यादे) लोगोंसे वेष्टित जंपान (एक सवारी का नाम है) में बैठा हुआ एक समुद्र नामका धनाढ्य वैश्य वहां आया और इनकी कांति तथा चेष्टा आदिसे महा विद्वान समझ इन्हें वासस्थानका परिचय पूंछने लगा। उत्तरमें जिनदत्तने "महाभाग! मैं योंही पृथ्वीपर इधर उधर घूमता फिरता हूं। मेरे यहां आनेका सिवाय देशाटनके कोई प्रधान कारण नहीं है" आदि कह कर कुशल क्षेम पूंछी और उसके बाद सेठ समुद्रके उस बागको हरे भरे हो आनेका कारण पूंछने पर जिनदत्तने उत्तर दिया—

"यदि मुझे मेरे कथनानुसार समग्र सामिग्री उपस्थित की जाय तो इस बागको नंदनवनके समान हरा भरा फल पुष्पोंसे युक्त कर सक्ता हूं।

सेठ समुद्रने जब इसप्रकार साहस भरी जिनदत्तकी बात सुनी तो उसने उनकी बताई हुई समस्त सामिग्री शीघ्र ही अपने भृत्योंसे उपस्थित करा दी। यह देख जिनदत्तने भी दौहदादिक उपायोंसे उस उद्यानको हरा भरा कर दिया। उसमें पहिले जो अशोक वृक्ष सूखे खडे थे वे अब कामिनी स्त्रियोंके पादताडनसे उत्पन्न पुलकोंके समान गुच्छोंसे शोभित जान पडने लगे। जो वाण वृक्ष रुंड मात्र खडे थे वे काम देवके वाणके समान पतिवियुक्त स्त्रियोंके मनको भेदनेवाले पुष्प और पुंखोंसे युक्त हो गये। जो तिलक वृक्ष पहिले नाम मात्रके ही तिलक थे वे अब पुंश्चली स्त्रियोंके कटाक्ष वाणोंसे आहत हो पुष्पोंसे युक्त होनेके कारण वास्तवमें वन लक्ष्मीके तिलक हो गये। जो कुरवक पहिले वास्तवमें कुत्सित रव करनेवाले [पुष्प न होनेसे भद्दे लगने वाले] थे वे ही अब स्त्रियोंके स्तन संसर्गसे आहत हो पुष्पित होनेके कारण गुंजारते हुये भ्रमरोंके शब्दोंसे सुरव:--सु-सुंदर रवक-शब्दवाले हो गये। जो बकुल वृक्ष पहिले बिलकुल शुष्क [नीरस] थे वे ही अब प्रमदाओं द्वारा किये गये मदके कुल्लोंसे सिक्त हो कुसुमोंकी सुगंधिसे पूर्व पीत मदको उगलते हुएके समान जान पडने लगे। जो चंपक वृक्ष पहिले रुंड मुंड खडे थे वे पुष्पोंसे युक्त होनेके कारण प्रवेश करते हुये कामके स्वागतार्थ उजाले गये मंगल दीपोंके समान शोभित होने लगे। जो कुंकुम वृक्ष पहिले अशुचितासे उत्पन्न होनेके कारण अस्पृश्य थे वे ही पुष्पोंसे सुगंधित हो जानेके कारण खलके समान मस्तकों पर अपना दखल जमाने लगे और इसी

प्रकार अन्य बहुतसे जो वृक्ष पहिले खराब हालतमें थे वे श्री जिनदत्त द्वारा अपने अपने योग्य सेक धूप पूजा आदि कारणोंके मिल जानेसे प्रफुल्लित हो गये।

जिनदत्त द्वारा इसप्रकार जब वह उद्यान फल और पुष्पों से शोभित कर दिया गया तो वहां आ आकर सुंदर पक्षि-गण किल्लोल करने लगे। आमकी कलियोंके भक्षण करनेसे मत्त हुई कोकिलायें मधुर मधुर शब्द करने लगीं। सुगंधित पुष्पोंकी सुगंधिसे भ्रमर सुखकारी मोदवर्धक गुंजार करने लगे। माधवी लताओंके मंडपमें कामी लोग क्रीडा करने लगे। नागवल्लीके आलिंगन करनेसे सुपारीके वृक्ष सफल जान पडने लगे। आकाशसे देखनेकेलिये पृथ्वीपर अव-तीर्ण हुई किन्नरियोंके गीतोंसे मृगगण स्तब्ध हो दूर्वा भक्षण छोड स्तब्ध होने लगे। लताओंके भीतर शुक और सारिका-यें बोलने लगीं। अपने अपने संकेत बांध अभिसारिकायें आने लगीं। वृक्षोंके नीचे तपस्वियोंको ध्यानमें मग्न देख खेचर भूचर और अमरगण एकत्र होने लगे। अधिक फलों के भारसे झुक झुक कर वृक्षोंकी डालियां टूटने लगीं और रतिके श्रमको हरण करनेवाली सुंदर पवन बहने लगी।

जब समस्त मनोहारी उद्यानके योग्य इसप्रकार वह उ-द्यान हो गया तो सेठ समुद्रको अति आनंद हुआ। उसने उसकी खुशीमें एक चैत्रोत्सव कराया और जिनदत्तका उसमें सद्वस्त्र भूषण आदिसे महासत्कार कर उपस्थित लोगोंको परिचय कराया जिससे कि उनकी वहां राजा आदि प्रधान प्रधान पुरुषोंमें खूबही कीर्ति हुई।

जिनदत्तके गुणोंपर मुग्ध हो उद्यानके अधिपति सेठ समुद्र इन्हें अपने घर ले गये और उन्हें वहीं रखने लगे। जिनदत्तको रहते रहते वहां जब कुछ दिन बीत गये तो सहसा इनके मनमें फिर वह ही विचार उठ आया और सोचने लगे--

"नहीं! मुझ इस सेठके घरमें रहना बिलकुल उचित नहीं है। मैं जिस उद्देशसे परदेश भ्रमण कर रहा हूं वह अभी पूरा नहि हुआ है। अभिसारिकाके समान चंचल लक्ष्मी अभीतक मेरे वशमें नहि हुई है और इसका वश करना मेरा प्रधान कर्तव्य है। क्योंकि इसके बिना मनुष्यके धर्म काम और अर्थ तीनो पुरुपार्थ सिद्ध नहि हो सक्ते। न तो इसके विना दान दे धर्म ही उपार्जन कर सक्ते हैं, न इसके विना अभीष्ट पदार्थोंका संग्रह कर काम ही सिद्ध हो सक्ता है और न इसके विना किसी तरहका व्यवसायकर अर्थ ही उपार्जन कर सक्ते हैं इसलिये सबसे पहिले तीनों पुरुपार्थोंके मूलभूत धनका पैदा करना ही कार्यकारी है।"

जब इसप्रकार जिनदत्तके मनमें पूर्व भावका फिर उदय हो आया एवं धन पैदा करना आवश्यक समझा तो उन्होंने सेठ समुद्रसे भांड मांगे और जहाज द्वारा समुद्र यात्राकर सिंहल द्वीप जानेका विचार प्रकट किया।

समुद्र सेठने जब जिनदत्तके उक्त प्रकार वचन सुने तो उसने "महाभाग! यदि आपकी धन उपार्जन करनेकी इच्छा है तो मेरे ही साथ क्यों न चलियेगा। मैं भी सिंहल द्वीप विचित्र विचित्र भांडोंको ले शीघ्र ही जाना चाहता हूं।"

कहा । जिसे सुनकर जिनदत्तने स्वीकार कर लिया और दोनों जने बहुतसे आदमियोंके साथ सिंहलद्वीपकी ओर रवाना हो गये ।

इसप्रकार श्रीमद्-आचार्य गुणभद्रभदंतविरचित संस्कृत जिनदत्तचरित्रके भावानुवादमें तृतीय सर्ग समाप्त हुआ ॥ ३ ॥

चतुर्थ सर्ग ।

सेठ समुद्रदत्त और हमारे चरितनायक जिनदत्त व्यापार करनेकी तीव्र इच्छासे सिंहलद्वीपकी तरफ रवाना हो क्रमशः समुद्रकी तटभूमिपर पहुंचे और वहांसे शुभ मुहूर्त्त शुभ दिनमें जिनेंद्र भगवानकी पूजा आदिकर उन्होंने जहाज द्वारा यात्रा करनी प्रारंभ करदी ।

जिस दिन हमारे इन दोनों व्यापारियोंने समुद्र यात्रा प्रारंभकी भाग्यवश उसीदिनसे हवा इनके अनुकूल बहनेलगी जिससे कि ये अपने समस्त धन धान्यके साथ सुरक्षित रीतिसे शीघ्र ही सिंहलद्वीप जा पहुंचे । वहां पहुंचकर इन्होंने अपनेसाथके मनुष्योंको यथायोग्य स्थानपर भीतर और बाहिर ठहरा दिया एवं कुमार जिनदत्त सर्वज्ञोपदिष्ट धर्मके गाढ भक्त होनेकेकारण एक श्राविकाकेसे आचरणवाली वृद्धाके घर ठहर गये और इनके कथनानुसार ही उसके यहां खान पानकी समस्त व्यवस्था होने लगी ।

जिस नगरमें आकर ये लोग ठहरे थे और जहां इन्होंने

अपने माल भांड बेचना चाहा था वहांका राजा मेघवाहन था। इसकी विजया नामक एक रानी थी और उससे श्री-मती नामकी एक पुत्री उत्पन्न हुई थी।

राजपुत्री श्रीमती उससमय युवावस्थाके प्रारंभमें पैर रख चुकी थी इसका रूप बडा ही सुंदर और सौम्य था परंतु जि-सप्रकार चंद्रमा अल्प कलंकसे दूषित होनेके कारण निंदनीय गिना जाता है उसीप्रकार यह भी एक रोगसे आक्रांत होनेके कारण लोगोंको भयकर मालूम पडती-थी और वह रोग यह था कि जो कोई मनुष्य इसके समीप सोता था वह ही यम-राजके घरका अतिथि बन जाता था। पुत्रीकी यह अवस्था देख घरके सब माता पिता आदिक इससे विरक्त हो चुके थे इसीलिये उन्होंने इसे दूर एक अन्य सुंदर महिलमें रख छोडा था एवं नगरवासियोंसे यह सादर प्रार्थना करली थी कि—

'हे प्रजा! मेरे पूर्व जन्मके पापसे एक पुत्री हुई है और वह भयानक रोगसे आक्रांत है इसलिये जबतक कोई उपयुक्त वैद्य न आ पावे तबतक कृपाकर हर एक घरसे एक एक आदमी आवे और मेरी पुत्रीके घरमें आकर रहे।" जिससे कि समस्त प्रजा अपने अपने घरसे एक एक आदमी वारी २ भेज दिया करती थी। इसी नियमके अनुसार जिससमय कुमार जिनदत्त वृद्धाके पास बैठे थे उसीसमय एक नापित आया और वृद्धाको लक्ष्यकर कहने लगा—

"वृद्धे! राजाज्ञानुसार तुम्हारे पुत्रकी आज वारी है। उसे यथासमय तुम राजपुत्रीके घर भेजदेना।"

नापितके मुखसे ज्योंही यह वचन वृद्धाने सुना तो वह

सन्न रह गई । उसने फूट फूट कर रोना शुरू किया । उसे जिसप्रकार आंगनकी पृथ्वीके कण चुगने वाले पक्षियोंको दुःख होता है उसीप्रकार चित्तमें महादुःख हुआ । वह विलख विलखकर इसप्रकार विलाप करने लगी—

"हाय ! मैं बडी ही मंदभागिनी हूं । छोटी अवस्थामें ही पति मरजानेसे मैंने जो जो दुःख सहे हैं उनके याद करते ही छाती फटती है । मेरी समस्त ऐहिक सुख प्राप्तिकी आशा तो उसी दिनसे नष्ट हो गई । परंतु ज्यों त्यों करके मेरे जो इकलौता पुत्र है उसीके मुंहको देख देखकर अपने जीवनको किसीप्रकार सुखी समझ दिन बिता रही हूं । मालूम पडता है अब वह बात भी मेरी दैवको असह्य है । उसे इतना सुख देना भी मेरेलिये अनिष्ट है इसी लिये आज मेरे पुत्रको हरण करनेकेलिये नाई द्वारा आज्ञा भिजवाई है । हा ! मेरे आंखोंके तारे ! मेरे जीवनके सितारे ! मेरे प्यारे लाल ! अब मैं तेरे बिना कैसे जीवित रह सकूंगी । हा हत्यारे दैव ! क्या मुझे इसी दिनको दिखलानेके लिये तैने इतने दिनतक जीवित रख छोडा था ?"

वृद्धाके इसप्रकार करुणा भरे वचनोंको सुनकर कुमार जिनदत्तका हृदय भर आया । वे करुणारससे पूरित होकर बोले—

"मा ! मैं समस्त तेरे दुःखोंको दूर कर सक्ता हूं । मैं विपत्तियोंके नाश करनेमें सब प्रकारसे समर्थ हूं । तू अपने उसी एक पुत्रको पुत्र न समझ, जैसा वह पुत्र है वैसा मैं भी तेरा एक पुत्र हूं । मा ! जिस पुत्रके भेजनेका समाचार सुन तू

इतनी दुःखित हुई है उसे तू मत भेज । उसके भेजनेकी कोई आवश्यकता नहि है । मैं ही वहां चला जाऊंगा और राजाज्ञाका पालन करनेवाली तुझे बनाऊंगा।"

जिनदत्तके ये परोपकारपरिपूर्ण वचन जब उस बुढियाने सुने तो वह बोली—

"बेटा ! वह और तुम दोनो ही मेरे पुत्र हो । जिसप्रकार मनुष्यको दाहीं और बांई दोनों ही आंखे प्रिय होती हैं उसीप्रकार मुझे तुम दोनों ही बराबर प्रिय हो । मैं तुममेंसे किसका नाश चाह सक्ती हूं । बल्कि तुममें यह विशेषता है कि तुम मेरे पुत्रसे अधिक कामके समान सुंदर हो, महा गुणी कुलके भूषण हो, इसलिये तुम्हारा तो अपने प्राण गँवाकर भी मुझे जिलाना इष्ट है।"

वृद्धाके उपर्युक्त वचनोंको श्रवणकर हमारे ओजस्वी चरित नायकके हृदयमें किसीप्रकारका निम्न भाव नहिं आया। किंतु वे अधिक इस बुढियाके दुख दूर करनेकेलिये सन्नद्ध हो गये और अपने मनमें इसप्रकारके भाव प्रकट करने लगे-

"संसारमें उसी पुरुषका जन्म लेना सार्थक है । वही वास्तवमें मनुष्य पर्यायका श्रेष्ठ फल प्राप्त करता है । जोकि विपत्तियोंसे विपन्न लोगोंका उद्धारकर उन्हें सुखसे संपन्न कर देता है। इसके सिवा जो लोग अपना ही अपना स्वार्थ सांठा करते हैं अपने सुखमें सुखी और दुःखमें दुःखी होते हैं अन्य लोगोंके सुख दुखकी कुछ पर्वा नहि करते वे नहि अन्धेके समान हैं उनकी पैदायससे संसारको कोई लाभ नही। देखो ! वृक्ष जोकि एकेंद्रिय महा अल्पज्ञानी हैं वे भी

जब अपने फलोंसे और छायासे अपने पास आते हुये पथि-
कोंका उपकार करते हैं। उन्हें फल पुष्प और छाया दे सुखी
बनाते हैं तब जो मनुष्य पंचेंद्रिय उनकी अपेक्षा महाज्ञानी हैं
उन्हें क्या परोपकार सरीखा श्रेष्ठ कार्य करना न चाहिये ।
उन्हें उसके करनेमें क्या प्रयत्नशील न होना चाहिये ? यदि
दूसरेका हित होता हो और उसमें अपने प्राणोंके जानेकी
भी संभावना हो तो उसे खुशी खुशी कर डालना चाहिये।
परोपकारकी दीक्षासे दीक्षित हो यदि उसके पालनेमें प्राण
तक भी चले जांय तो कोई डर नहीं । उसे भंग न होने देना
चाहिये। चंदनमें यह एक आश्चर्यजनक गुण है । वह स्वयं
जल कर दिशाओंको सुगंधित कर देता है और अपने परो-
पकारित्वका ज्वलंत उदाहरण लोगोंको देकर भस्म हो जाता
है। इसलिये जो मैं पहिले वृद्धाको वचन दे चुका हूं, जो
उसके दुःख दूर करनेकी अटल प्रतिज्ञा कर चुका हूं उससे
मुझे कभी विचलित न होना चाहिये। अवश्य ही इस दुःखिनी
वृद्धाका दुख दूर कर देना मेरा कर्तव्य है।"

इन विचारोंको विचारते विचारते जिनदत्तके हृदयमें
एक अपूर्व ही आनंदकी तरंग उठी, वे बुढियासे बार बार
आग्रह करने लगे और आखिर उससे अपनी वहां जानेकी
स्वीकारता ले ही ली।

बुढियाकी सम्मति पाकर जिनदत्तने स्नान किया, सुगं-
धित द्रव्यसे शरीरका लेप किया, समस्त भूषण पहिने और
पुष्प तांबूल वस्त्र गंध आदिसे सन्नद्ध हो चलनेकी तयारियां
करने लगे । चलते समय साथमें इन्होंने शस्त्रलेना भी

योग्य समझा वसुनंद और कृपाण इन दो शस्त्रोंको दोनों हाथमें ले राजपुत्रीके महिलकी ओर चल दिये।

वीर वेशमें सज धज कर राजमार्गसे जाते हुये युवा जिनदत्त साक्षात् विजयाभिलाषी काम सरीखे जान पड़ने लगे। जो पुरुष इनकी तरफ अपनी दृष्टि डालता था वही गहरे आश्चर्य सागरमें डुबकी लगाने लगता था। जो स्त्री इनकी तरफ देखती थी वह भी इनके सौंदर्य और गमनपर आश्चर्यान्वित हो जाती थी। चलते चलते हमारे युवक राजमंदिरके पास पहुंच गये। जब इन्हें राजाने देखा तो पास पासमें बैठे हुये लोगोंसे इनका समस्त परिचय 'कहांसे आया है कौन है? कहां को जा रहा है?' आदि पाकर बडा ही दुःखित हुआ। उसके हृदयमें उससमय गहरी चोट लगी। वह अपने उस दुष्कृत्यको बार बार धिक्कारने लगा और सोचने लगा–

"हाय! मुझ सरीखे नीच पापी पुरुषोंका जीना इस संसारमें बड़ा ही निकृष्ट है। मैं राजा नहीं कषाई हूं। मैंने अपनी पुत्रीके छलसे इस जगह कालरात्रि बनवा रक्खी है। हा! इसमें आकर प्रतिदिन संसारके श्रेष्ठ श्रेष्ठ पुरुष अपना जीवन सर्वस्व खो देते हैं। अरे! यह मनुष्य पर्याय बड़ी ही चंचल है। इसकी आयु बहुत ही कम है। देखो! इससमय सबके मनको मोहनेवाला यह युवा जो दीख रहा है वह ही आज रात्रिमें कालके गालमें पहुंचकर सर्वदाके लिये आंखोंसे ओझल हो जायगा।

राज्यकी लोग प्रशंसा करते हैं परंतु मुझ सरीखे पापकर्माओंका वह सर्वथा निंदनीय है मैं बड़ा ही अन्यायी हूं। अब–

राध होनेसे दंड देना लोगोंको उचित है परंतु मैं विना ही अपराधके प्रतिदिन एक मनुष्यको कालकेगालमें पहुंचा देता हूं।

अयि महाभाग! तू अपनी आकृतिसे कोई विशेष पुण्यशाली मालूम पड़ रहा है। तू अपने ही प्रभावसे अपनी रक्षा करना। तुझसरीखे संसारमें बहुत कम मनुष्य पाये जाते हैं। अतएव तेरेलिये यह कोई बडी बात नहीं।"

जिनदत्तको देखकर राजा इसप्रकारका विचार कर ही रहा था कि कुमार अपनी गतिसे पृथ्वीको चल विचल करते हुये राजकुमारीके महलतक जा पहुंचे और प्राणियोंको भय करनेवाले उस मकानके पहिले मंजलेपर देखते देखते चढ़गये।

कुमारने पहिले मंजलेपर चढ उसकी समस्त दिशा विदिशाओंमें देखा। वहां जब उन्हें कुछ न दीखा तो वे उसके दूसरे मंजलेपर चढे और वहां सुंदर सेजपर बैठी हुई एक कुमारीको देखा। यह कुमारी खेदखिन्न चित्तवाली थी। इसके नेत्र विस्तृत किंतु विषादयुक्त थे और द्वारकी तरफ किसीके आगमकी आशाकर देख रही थी। कुमारने जब इसे देखा तो उन्होंने आकृतिसे इसे राजपुत्री समझा और इसलिये इसके पासकी शय्यापर बैठकर बात चीत करने लगे। राजकुमारीने जब इन्हें सुचतुर और मनोहर पाया तो तांबूल आदिसे इनका आदर सत्कार किया और रात्रि वितानेकी इच्छासे कथा पूछी। कुमारने राजकुमारीके प्रश्नानुसार सुननेमें मनोहारी कथा कहना आरंभ किया। अधिक रात्रि होजानेसे कथा सुनते सुनते जब राजपुत्री सोगई और हुंकारा देना बंद करदिया तो जिनदत्त अपने आसनसे उठे एवं "न जाने क्या कारण है जो इसके

समीप सोनेसे मनुष्य कालके गालमें फंस जाते हैं ? क्या यह भूतना है या किसी राक्षसका यह काम है ? या अन्यही कुछ कारण है ? इसकी वास्तविकता जाननेके लिये मुझे यहां आज जगता रहना चाहिये क्योंकि जो सोजाते हैं उनपर ही चोरोंका आक्रमण होता है जीते जागतेको कोई नहि अकस्मात् लूट सकता।" यह विचारकर महिलकी छतपर गये और वहांसे एक मुर्देको उठा लाकर अपनी जगह कपडेसे ढककर सुलादिया तथा स्वयं दीपककी छयामें खंभेसे छिपकर हाथमें तलवारले सावधान हो बैठ गये।

जिनदत्त इसप्रकार सावधान हो चारो तरफ दृष्टि दौडा दौडाकर देखते जाते थे कि थोडी देर बाद राजपुत्रीके मुखसे एक साथ निकलती हुई दो जीभें दिखलाई दीं। ये जीभें जलतीहुई अग्निके समान जाज्वल्यमान थीं, इधर उधर लहरा रही थीं और देखनेवालेको भय करनेवाली थी। ज्योंही इन दोनोंको कुमारने देखा त्योंही अपनी शंकाका समाधान होते देख वे मुस्कराये और उत्सुकतापूर्वक सावधानीसे उसे देखने लगे इन दोनों जीभोंके बाद एक फण निकला। फणके बाद कालदंडके समान भयंकर लंबायमान शरीर निकला। समस्त शरीर निकल आनेके बाद वह सर्प कुमारीकी शय्यापरसे उतरकर पासकी शय्यापर गया और वहां पडे हुये मुर्देको अपने तीक्ष्ण दांतोंसे काटने लगा। सर्पके इस व्यापारसे चकित हो जिनदत्त शीघ्र ही उसके पास आये और अपने हाथकी तलवारसे दयारहित हो उसके आठ टुकडे करडाले। इसके बाद कुमारने कुमारीकी जो पेटी थी उसमें तो उन सांपके टुकडोंको रख

दिया। मुर्देको दूर हटा अपनी तलवार म्यानमें बंद करली और स्वयं सुखपूर्वक निश्चिंत हो गये।

कुमारीकी जब व्याधि दूर हो गई तो वह भी सुखपूर्वक निश्चिन्ततासे खूब सोई। उसने प्रातःकाल शीतल मंद सुगंधित पवनसे आहत हो आंखे खोलीं और अपने हलके शरीर तथा कृश हुये पेटको देखकर सोचने लगी—

"अहा! मेरे इस शरीरके सुखी होनेका क्या कारण है? मेरा पेट आज मुझे बहुत ही हलका मालूम पडता है। उत्साह भी आज अन्य दिनोंसे अधिक है। वास्तवमें मुझे अपनी व्याधि आज नष्ट हुई मालूम पडती है इस व्याधिने मुझे बडा ही दुःख दिया। हाय इसके कारण मैं अपने कुटुंबियोंसे अलग की गई। इसके कारण ही मैं इतने मनुष्योंके प्राण लेनेकी निमित्त हुई। पर आज बडे हर्षकी बात है कि वह सर्वनाशिनी व्याधि इस महापुरुषके दर्शन मात्रसे चली गई। अहा! इस संसारमें यद्यपि शकल सूरतमें सब मनुष्य प्रायः एकसे दीखते हैं परंतु उनमें गुणी परोपकारी विरले ही होते हैं। जिसप्रकार समस्त ग्रह एकसे हैं परंतु उनमें जो सूरजकी महिमा है वह किसीकी नहीं है उसीप्रकार मनुष्य भी एकसे हैं परंतु जो परोपकारी हैं वे ही प्रशंसाके भाजन हैं। इस महात्माके दर्शनसे जिसप्रकार मेरे हृदयसरोवरमें आनंदकी तरंग उठीं थी उसीप्रकार रात्रिभर सहवास रहनेसे मैं अमृतपूरसे अभिषिक्त हो गई। आज मेरा बडा ही शुभ भाग्यका उदय हुआ है।"

इसके बाद राजकुमारीने अपनी नीरोगतासे प्रसन्न हो लज्जाभरी दृष्टिसे हाथ जोडकर पूछा—

"स्वामिन्! यद्यपि मैं यह समझती हूं कि यह सब निरोगता आदि आपकी कृपाका ही फल है तो भी रात्रिमें जो कुछ वृत्तांत हुआ हो उसे सुना मुझे कृतार्थ कीजिये।"

राजपुत्रीका यह प्रश्न सुन कुमारने रात्रिमें जो कुछ हुआ था उसके विश्वासके वास्ते उसे अपने गहनेकी पिटारी खोलकर देखनेको कहा। ज्योंही पुत्रीने पिटारी खोली तो वह उसमें सर्प देखकर 'सांप, सांप' कहकर दूर भागी। यह देखकर कुमारने उसका भ्रम दूर किया और रात्रिमें जो कुछ वृत्तांत हुआ था वह सब कह सुनाया।

जिनदत्त राजपुत्रीको रात्रिका वृत्तांत सुना ही रहे थे कि इसी बीचमें महलका अध्यक्ष वृत्तांत जाननेकेलिये आया और इनका समस्त समाचार जाकर उसने राजासे निवेदन करदिया।

अध्यक्षके मुखसे राजाने जब अपनी पुत्रीकी कुशल पा ली और जिनदत्तको भी जीता जागता सुनलिया तो वह शीघ्र ही हाथीपर चढ़कर कुछ आदमियोंके साथ आया। राजाको अपने पास आता देख उसके सत्कारकेलिये जिनदत्त उठे और राजा भी उन्हें सन्मानकी दृष्टिसे देख पास ही बैठ गया।

व्याधिके चले जानेसे कुमारीकी आभा एक अपूर्व ही तरहकी हो गई थी। उसके चहरेपर पहिले जो उदासी छाई रहती थी वह अब सर्वथा किनारा करगई। उसके समस्त शरीरमें दीप्ति छटकने लग गई थी। राजाने ज्योंही अपनी पुत्रीको उस अवस्थामें देखा उसके नेत्र देखते देखते तृप्त न होसके। कौतुकसे पूर्ण हो उसने समस्त हाल जाननेकी

इच्छा प्रकटकी। और कुमारीने शीघ्रतापूर्वक जो कुछ हाल कुमारसे उसे मालूम हुआ था वह कह सुनाया।

कुमारीके मुखसे समस्त वृत्तांत जानकर राजाको बडा ही आश्चर्य हुआ। उसने आनंदसे पुलकित हो इसप्रकार सोचा-

'अहो! संसारमें भाग्य बडा प्रबल है। उसकी गतिका कोई पार नहि पासका। कहांका रहनेवाला तो यह कुमार! और कहांकी रहनेवाली यह पुत्री? परंतु इन दोनोंका इसीतरह संयोग होनेवाला था। अहा! यह महात्मा धन्य है इसने मेरा बडा भारी उपकार किया है। जो मेरे कुलकी कीर्तिमें धब्बा लगानेवाली वात थी, जिससे मेरा राज्य कलंकित होरहा था वह रोग सर्वथा इसने दूर कर दिया। इसका प्रत्युपकार सिवा इसके कुछ हो ही नहि सक्ता कि मैं इसे अपनी पुत्री दूं। नहीं! नहीं!! यह इसका प्रत्युपकार नहीं है। माता पिताका कर्त्तव्य है कि वे गुणीको अपनी पुत्री दें। इससे अधिक गुणी मुझे कोई नहि दीख रहा है। तब इसे न देकर दूसरेको पुत्री देना सर्वथा अयोग्य है इसके सिवा इस मेरी पुत्रीकी लालसा भी इस युवाके साथ विवाह करनेकी मालूम पड रही है देखो! जिसप्रकार अन्य लोगोंकी दृष्टि इस कुमारके मुखपर पड रही है उससे एक भिन्न प्रकारकी ही विकसित और ईषदाकुंचित इसकी दृष्टि इसके मुखकी ही तरफ है। कुछ कुछ सूक्ष्म पसीनेकी बूंद भी इसके गंडस्थलपर चमक रही हैं। गर्म गर्म उच्छ्वासोंसे इसके अधरपल्लव भी म्लान हो रहे हैं। वाणीके भी बोलनेमें स्खलना खासी प्रतीत हो रही है। कंप रोमांच भी इसके शरीरमें उत्पन्न हो रहे हैं यह असाव-

धनता भी अपनी प्रकट कर रही है जिससे कि कुमारमें इसका मन है यह स्पष्ट मालूम हो रहा है। इसके सिवा इसकी सखियोंमें भी इस वातकी यथेष्ट चर्चा हो रही है इसलिये भी कुमारमें इसके आसक्त होनेकी दृढता मालूम पडती है। अस्तु ॥ चाहैं जो कुछ हो। जैसा मैने अपने मनमें विचारा था वैसा ही यह वर मेरी पुत्रीके पुण्यसे आकृष्ट हो यहां आगया है। इसे अब कन्या दे देना ही उचित है। इस संबंधसे मेरा इसके साथ संबंध भी दृढ हो जायगा। अथवा इसमें मेरा कुछ कर्तव्य ही नही हैं। विचित्र विचित्र पदार्थोंके संयोग करानेवाले भाग्यने ही संबंध रचा है वह ही इस विवाहविधिको भी पूरी करेगा क्योंकि सवका कर्ता धर्त्ता विधि ही है मनुष्य तो केवल उसमें साक्षीके वतौर पड जाता है।"

राजा मेघवाहनने इसप्रकार ऊहापोहकर अपना मंतव्य स्थिर करलिया और अपनी पुत्रीका शुभ मुहूर्तमें कुमार जिनदत्तके साथ विवाहकर गुणज्ञताका परिचय दिया।

कुमार जिनदत्त राजा मेघवाहनके अत्याग्रहसे उसकी पुत्री श्रीमतीका विवाहकर पंचेद्रियोंके सुख भोगने लगे और वह पुत्री भी छायाके समान इनकी आज्ञानुवर्तिनी हो रहने लगी।

जिनदत्त जैन धर्मके प्रवल पंडित थे। इन्होंने समस्त शास्त्रोंके साथ साथ जैन शास्त्रोंका भी खासा ज्ञान प्राप्त किया था और इन्हें उनपर श्रद्धान भी खूव अटल था। भला वे कैसे अपनी अर्द्धांगिनीको अपनेसे भिन्न धर्मावलंविनी देख सक्ते थे। इन्होंने उसे भी सर्वज्ञप्रणीत धर्मसे संस्कारित

करना चाहा इसलिये मिथ्यात्वके त्यागपूर्वक वे उसे वास्त-विक धर्मका इसप्रकार उपदेश देने लगे—

" प्यारी! संसारमें इस जीवका जितना अहित विपरीत पदार्थोंके ज्ञान, श्रद्धान और आचरणसे होता है उतना किसीसे भी नहिं होता इसलिये सबसे पहिले इसका त्यागना और वास्तविक पदार्थोंका ज्ञान, श्रद्धान आचरण करना ही श्रेय-स्कर है। जो देव नहीं हैं उन्हें देव मानना, जो गुरुके गुणोंसे रहित हैं उन्हें गुरु स्वीकार करना और जो तत्त्व नही हैं उन्हें तत्त्व मानना ही मिथ्यात्व है। जो लोग इस मिथ्यात्वसे ग्रस्त रहते हैं-देवादिको देव न मान कुदेवादिको देव मानते हैं उन्हें इस लोकमें ही नहीं किंतु परलोकमें भी दुःख उठाने प-डते हैं वे मरकर सातो नरकोंमें असीम वेदनायें जो भोगते हैं वे तो भोगते ही हैं परंतु समस्त संसारमें जितने भी दुःख हैं वे सब भी उन्हें भोगने पडते हैं।

समस्त दोषोंसे रहित, मुक्तिरूपी ललनासे स्वयं वरण किये गये, लोक अलोकके समस्त पदार्थोंके जानकार जो देव हैं वे ही सच्चे देव हैं उनसे भिन्न रागद्वेष आदि मलसे मलिन क-दापि देव नहिं हो सक्ते क्योंकि जो विरागी कृतकृत्य और सर्वज्ञ है वह ही आप्त हो सक्ता है अन्य नहीं। इसलिये तू देवताओंमें सर्वश्रेष्ठ वीतरागी जिनेंद्र भगवानको ही देव समझ। उनका ही मन वचन कायसे सर्वथा श्रद्धान कर। वे ही चरा-चर समस्त जगत्के ज्ञायक हैं छोटेसे लेकर बडों तक सबपर दया करनेवाले हैं और सबके स्वामी हैं।

उपर्युक्त गुणवाले जिनेंद्र भगवान द्वारा जो धर्म उपदेशा गया है वह ही सुगति प्रदान करनेवाला है। उसीसे जीवोंके समस्त अभीष्टोंकी सिद्धि होती है। उस धर्मका प्रधान कारण दया है। जिसप्रकार रसायनके योगसे तांबा सोना हो जाता है और उससे समस्त इच्छायें पूरी हो निकलती हैं उसीप्रकार दयाके साथ धारण किये गये धर्मके बराबर अमूल्य कोई वस्तु नहीं है। उससे मनचीते कार्य पूरे हो जाते हैं। जो लोग देवताओंके लिये भी हिंसा करते हैं प्राणियोंका वधकर उन्हें दुःख पहुंचाते हैं वे नरकमें प्राप्त होने योग्य दुष्कर्म करते हैं। जिसप्रकार विष मीठे पदार्थके साथ खाया हुआ भी अपने स्वभावको नहि छोडता-प्राण लेकर ही मानता है उसीप्रकार देवताओंके लिये किया गया भी प्राणिवधरूप पाप पुण्य कभी नहि हो सकता- उससे अवश्य दुःख प्राप्त होता है। इसलिये हे बाले! जिन जिन कारणोंसे प्राणियोंको दुःख पहुंचता है-उनके बाह्य और अंतरंग प्राणोंका नाश होता है उन समस्त कारणोंको तुझे छोड देना चाहिये। ऐसा करनेसे ही निर्दोष धर्मका उपार्जन होता है। संसारमें प्राणियोंको जो कुछ भी सुख मिलता है वह सब दयारूपी कल्पलताके ही कारणसे होता है। जिसप्रकार विलायंदसे आकाश नहि नापा जा सका उसीप्रकार इस दयाके सहारेसे होनेवाले गुणोंकी गिनती नहि हो सकी। प्राणियोंके ऊपर दया करनेसे बढकर कोई दूसरा श्रेष्ठ धर्म नहि है और यही बात जिनेंद्र भगवानने भी कही है। हम चाहें कितने भी अन्य धार्मिक अनुष्ठान करें कितनी भी क्रिया पालें परंतु यदि उन्हें हम दयासे रहित हो

करते हैं तो वे सब निष्फल हैं उनसे पुण्यके बजाय पापकी ही प्राप्ति होती है। जिसप्रकार नाना गुण और वस्त्राभूषणों से सुसज्जित भी कुलटा स्त्री एक शील गुणके अभावसे लोक में श्रेष्ठ नहि गिनी जाती इसीप्रकार समस्त धार्मिक क्रियाकलाप एक दया गुणके न होनेसे प्रशंसित नहि होते।

जो महात्मा पुरुष इस संसारकी वास्तविक दशाका परिज्ञान कर भव और भोगोंसे विरक्त हो गये हैं जिनकी शरीरके ढांचेमें भी प्रीति नहि रही है, जो तृणके समान अपनी समस्त लक्ष्मीको छोडकर निर्ग्रंथ व्रत धारण कर जीवन विता रहे हैं, जो अपने प्राणोंके नष्ट होनेपर भी कभी अन्य जीवोंकी विराधना नहि करते, जो मिथ्या वचनोंका बोलना गर्ह्य समझते हैं, जिनके दूसरेकी विना दी हुई वस्तु ग्रहण करनेकी प्रतिज्ञा है, जो स्त्रियोंके सहवास भोगसे विरक्त हो चुके हैं, जो मुनि अवस्थाके योग्य पिच्छि कमंडलुसे अतिरिक्त परिग्रह रखनेके त्यागी हैं, जो लाभ अलाभ, शत्रु मित्र, लोष्ट कांचन और सुख दुःखमें समानभाव रखनेवाले हैं, जिनके सोने बैठनेकी पृथ्वी ही शय्या है, जो वन आदि एकांत स्थान में रहते हैं और जिनके अध्ययन, अध्यापन और ध्यान करना ही कर्म है वे सांचे गुरु हैं। ऐसे गुरुओंके चरण कमलकी रज स्पर्श करनेसे ही प्राणियोंके पाप दूर भग जाते हैं और ऐसे ही जातरूप गुरुओंके हस्तावलंबनसे संसारसमुद्रमें डूबते हुये लोग पार पाते हैं। इसके सिवा जो लोग काम क्रोध मद उन्माद मोहसे अंधे हैं, और इंद्रियविषयोंके भोगनेमें ही सर्वदा अनुरक्त रहते हैं, वे संसार सागरसे जीवों-

का कभी उद्धार नहि कर सके। जिसप्रकार गुरु-भारी वस्तु-के सहारे कोई समुद्र नहि पार कर सका उसीप्रकार ऐसे विषयांध गुरुओंके वास्तविक गुरु (उपदेशक) न हो गुरु (भारी) होनेसे जीव संसार समुद्र पार नहि कर सक्ते।

सुंदरी ! इसप्रकार देव धर्म और गुरुओंके स्वरूपका ज्ञान और श्रद्धान कर । इससे तुझे इस लोक और परलोक दोनों लोकमें सुखकी प्राप्ति होगी। यही इसप्रकार श्रद्धान करना ही सबसे पहिले इस जीवको कल्याणकारी है । इसके करने से ही समस्त नियम यम सार्थक होते हैं और वृद्धिको पाते हैं। इसके विना कोई भी सुकर्म सुकर्म नहि होता।

प्यारी ! यह जो तुझे सुदेव, सुधर्म और सुगुरुका स्वरूप बतला श्रद्धान करना बतलाया है इसको सुदृढ करनेके लिये मंदिरा मांस और मधु न खाना चाहिये। इनके खानेसे अनंत जीवोंका संहार होता है । अगणित जीवोंकी उत्पत्ति के स्थानस्वरूप वड पीपल आदि पांच उदंबरोंका खाना भी अनुचित है। सूर्यके प्रकाशके न होनेसे अनेक जीवोंका नाशक रात्रिभोजन करना भी सर्वथा अयोग्य है और अहिंसा आदि व्रतोंका पालना भी आवश्यक है। कृत कारित और अनुमोदित संकल्पी द्वींद्रियादि जीवोंकी हिंसाका त्यागकरना अहिंसाव्रत है। स्थूल मिथ्या वचनोंका न बोलना सत्यव्रत है। दूसरेकी विना दी हुई वस्तुका ग्रहण न करना अचौर्यव्रत है। पराई स्त्री या परपुरुषका न सेवना ब्रह्मचर्यव्रत है । धन धान्य आदि परिग्रहका मान करना परिग्रहपरिमाणव्रत है। समस्त कल्याणोंका करनेवाला पात्रमें दानदेना दान है। भोग उप-

भोगकी वस्तुओंका मान करना भोगोपभोगपरिमाणव्रत है। समस्त परिग्रहोंमें ममताको छोड़कर अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय और साधुओंके गुण स्मरणपूर्वक आराधनाविधिसे प्राण छोडना सल्लेखना है। दिशाओंमें जानेका नियम करना दिग्व्रत है। देशोंमें जानेका नियम करना देशव्रत है। विना प्रयोजन पापोत्पादक क्रियायोंका न करना अनर्थदंडव्रत है। प्रातः सायं और मध्यान्हमें विधि अनुसार पंच गुरुओंका स्मरण वा अपनी आत्माका ध्यान करना सामायिक है और इंद्रियोंकी उग्रताको रोकने, धार्मिक क्रियायोंके करनेकेलिये जो आठ प्रहर वारह प्रहर आदि समयतक अन्न आदिका त्यागना है सो प्रोषधव्रत है।

इसप्रकार अहिंसा आदि वारह व्रतोंका स्वरूप तुझे जिनेंद्र भगवानके कथनानुसार कहा है। इन व्रतोंका पालना तेरेलिये आवश्यक है इसलिये अभी तो तू इसीप्रकार इन्हें धारण करले पश्चात् तुझे विशेष विधि अनुसार गुरुके समक्षमें इनसे दीक्षित कराऊंगा।"

अपने पति जिनदत्तकी हृदयग्राहिणी युक्तिसिद्ध वाणीको अब राजपुत्रीने सुना समझा तो वह अति आनंदित हुई। उसने शीघ्र ही समस्त व्रत धारण करलिये और जैनधर्मकी गाढ श्रद्धावाली हो गई।

इसप्रकार अपनी प्यारीको अपने समान श्रेष्ठ धर्मसे संस्कृतकर जिनदत्त सांसारिक सुख भोग रहे थे कि इतनेमें ही इनके साथका वणिकसमुदाय अपने देश लौटनेकी तयारी करने लगा। जब यह समाचार इन्हें मालूम हुआ तो इन्होंने

अपने श्वशुर राजा मेघवाहनसे भी जानेका विचार प्रकट किया और उसने पुत्री तथा उसके परिवार सहित इन्हें देश जानेकी सम्मति प्रदान करदी। जिससमय हमारे चरितनायक अपने श्वशुरसे वियुक्त होने लगे और जहाजपर सवार होनेकेलिये चलने लगे तो इनके श्वशुरने इन्हें छत्तीस करोड़ सुवर्ण मुद्राओंके मूल्यवाले हारको भेंटमें दे इनका सत्कार किया। एवं अन्य राजकीय परिवारके मनुष्योंने तथा अंतःपुरकी रानियोंने यथायोग्य भेंट आदि दे इनमें स्नेह और भक्ति प्रकटकी।

जिनदत्तने समुद्रके किनारे तक साथ आये हुये अपने स्नेहियोंको विदा किया और मांगल्यविधिपूर्वक शुभ मुहूर्त्तमें जहाजपर सवार हो अपने साथी व्यापारियोंके साथ देशकी तरफ रवाना हो गये।

इसप्रकार श्रीमद्-आचार्य गुणभद्रभदंतविरचितसंस्कृत जिनदत्तचरित्रके हिंदी-भावानुवादमें चतुर्थ सर्ग समाप्त हुआ ॥४॥

पांचवां सर्ग।

अनुकूल पवन होनेसे जहाज शीघ्रतापूर्वक देशकी तरफ लौटने लगा। उसमें बैठे हुये लोग समुद्रकी शोभाका निरीक्षण करने लगे। मार्गमें कहीं तो उन्हें बेलल-तायें दीखने लगीं। कहीं मकर मच्छ दिखलाई पड़ने लगे। कहीं मछलियोंके झुंडके झुंड दीख पडने लगे। कहीं अनेकांत मतके समान वह अनेक भंगों [नयों-तरंगों] से शोभित जा-न पडने लगा। कहीं कांताके स्तनतटके तुल्य मुक्ताहारसे संयुक्त दीख पडने लगा। कहीं कृपणके समान अपनी छिपी हुई अमूल्य माणिक्य व शंखादिक द्रव्योंको कुछ कुछ दिखा कर फिर छिपाता हुआ मालूम होने लगा। कहीं नदी आदिके गिरनेसे भीषण शब्दोंवाला दीख पडने लगा। कहीं कर्पूर आदि सुगंधित द्रव्योंके संसर्गसे सुगंधित पवनवाला जंचने लगा और कहीं किसी भिन्न प्रकारकी ही छटा दिख-लाने लगा।

इसप्रकार जहाज जब खूब जोरोंसे जा रहा था और सब लोग समुद्रकी नाना छटाओंका आस्वादन लेते जा रहे थे कि इतनेमें सेठ समुद्रदत्तकी दृष्टि रूपकी खानिस्वरूप जिनदत्तकी नवविवाहित पत्नी श्रीमती पर जा पडी। वह उसके अप्रतिम सौंदर्यको देख अवाक् रह गया। वह उसपर ऐसा आसक्त हो गया कि खाने सोने जागने उठने बैठनेकी भी उसे सुध न रही। उसके संगमकी तीव्र लालसासे एक २

दिन भी उसको वर्षों सरीखा कटने लगा और वह कामाग्निसे संतप्त हो सोचने लगा--

" आह ! मैंने हजारों और लाखों सुंदर २ युवति स्त्रियां देखी हैं परंतु इसके देखनेसे तो वे मुझे किसी कामकी ही नहीं मालूम पडतीं । यदि उनका इसके एक पैरके अंगूठे से भी मिलान करूं तो भी वे वरावरी नहीं कर सकतीं। इस संसारमें वही पुरुष धन्य है और वह ही वास्तवमें प्रशंसाके योग्य भी है जिसको यह स्वयं अपने कटाक्षोंसे ताडित कर सुखी वनाती है। हाय ! यह समस्त संसारके आनंदको प्रदान करनेवाली परम सुंदरी रमणी मुझे कैसे मिले ? यदि किसी तरह यह प्राप्त हो जाय तो मैं अपनेको धन्य समझूं और तब ही मेरा जीवन भी सफल हो । अथवा इसके पति वीर-श्रेष्ठ कुमारके जीवित रहनेपर मेरा मनोरथ सिद्ध होना सर्वथा असंभव है इसलिये सबसे पहिले इसी [जिनदत्त] को मकर मच्छोंसे व्याकुल इस अथाह समुद्रमें गिराकर मार डालूं और तब निःशंक हो इसके साथ सुख भोगूं।"

सेठने इसप्रकार जब अपने मनमें कामाग्नि बुझाकर शांत होनेका दृढ निश्चय कर लिया तो जिनदत्तसे भिन्न पुरुषोंसे गुप चुप यह बात कह दी कि ' देखो ! यदि समुद्रमें कुछ वर्तन आदि गिर पडे तो तुम लोग कोई भी उठानेका प्रयत्न न करना--उसे यों ही रहने देना।" और स्वयं जानबूझ कर एक वडी भारी वस्तु उसमें पटक दी । वस्तुके गिरने मात्रसे बडाभारी शब्द हुआ पर सेठकी आज्ञानुसार किसी ने जान बूझ कर भी उसे निकालने का प्रयत्न न किया। सब

के सब चुपकी मारकर रह गये। जिनदत्तको समुद्रदत्तके गुप्त दुर्विचारका पता न था वे सचमुच किसी हानिकर वस्तु के गिर जानेके भयसे उसे निकालनेके लिये समुद्रमें उतरने पर राजी हो गये। कुमार ज्यों ही उतर कर जलमें पहुंचे त्यों ही दुष्ट समुद्रने उनकी रस्सी काट दी और वे निरालंब हो समुद्रमें ही रह गये एवं अपना जहाज भी शीघ्र २ खेकर वहांसे बहुत दूर ले गया।

अपने पति कुमार जिनदत्तके इसतरह असमयमें वियुक्त हो और आंखो देखते अन्यायसे पीडित होते देख विचारी श्रीमतीकी विलक्षण दशा हो गई। वह जलके विना मछलीके समान अपने प्राणाधारके वियोगमें दुःखसे छट पटाने लगी रोते रोते उसकी हिचकी भर आई, नेत्र लाल हो गये, तन वदन की सुधि न रही और किंकर्तव्यविमूढ हो निश्चेष्ट हो गई। उसकी यह अवस्था और अपने मनोरथकी सिद्धिका सुअवसर देख दुरात्मा समुद्र सेठ शीघ्र ही उसके पास आया और अपने विष भरे शब्दोंमें उससे यों बोला—

"अयि चंद्रवदनी! सुंदरि! शोक मत कर। जिसके लिये तू शोक करती है वह समस्त सुख मैं तुझे देनेकेलिये तयार हूं। मैं तेरी समस्त आशायें पूरी करूंगा पर तू एक बार मेरी तरफ प्रसन्न हो दृष्टिपात कर। हे तन्वंगि! जब तेरी संपूर्ण आज्ञाओंका शिरपर उठाने वाला मैं तैयार हूं और असंख्य धन तेरे हाथमें है तब तेरा खेद करना व्यर्थ है। हे शुभानने! बढिया बढिया वस्त्र विचित्र विचित्र गहने जो तुझे चाहिये उन्हें पहिन और ओढ, समस्त भृत्योंके ऊपर

मालिकी कर एवं मेरे साथ निर्विघ्न सुख भोगते हुये अपने इस अमूल्य अनुपम यौवनको सार्थक बना । हे मुग्धे ! मैंने तेरे इसी यौवनकी बहार लूटनेके लिये और तुझे सर्व प्रकारसे सुखी बनानेकेलिये ही छलपूर्वक जिनदत्तको समुद्रमें गिरा दिया है । अब वह विचारा कहां ? तू निःशंक हो सर्वप्रकारके इंद्रिय सुख भोग । तेरा इसमें कोई भी कंटक नहीं हो सका।"

पापी सेठकी इन बातोंको सुनकर तो श्रीमतीके और भी होश उड गये। वह अबतक तो अपने भाग्यको कोस कोसकर ही रोती थी पर जब उसे जहाजके मालिक सेठकी ही यह करतूत मालूम पडी और तिसपर भी उसके अपने साथ व्यभिचार करनेके भाव मालूम हुये तो वह और भी विह्वल हो गई। उसने अपने शिर को पटकते २ सोचा-"हाय ! इस सेठको अबतक मैं अपने पिताके तुल्य समझती थी पर वह ही वैरी निकला। इसी कामांधने अपने व्यभिचारके पोषणार्थ मेरे पति देवको समुद्रमें गिरा दिया है और फिर अब पापका प्रस्तावकर घावमे नमक छिडक रहा है। हा! भगवन् ! यह कैसा मूढ है कृत्य अकृत्यके विचारसे सर्वथा रहित है जो क्षणस्थायी विषयसुखकेलिये अपने नित्य सुखदायक धर्मको तिलांजलि देनेपर तयार हो गया है। अरे ! मेरे पतिचद्रको निगलकर मेरी आंखोंकी ओझल करनेवाले इस दुष्ट पिशाचका मैं मुख ही क्यों देख रही हूं। हा ! अथवा इसमें इसका अपराध ही क्या है? मैं ही पापात्मा सर्वथा अपराधिनी हूं। मेरे रूपकी सुंदरताको देखकर ही इसने ऐसा किया है।

यदि मैं कुरूप होती तो क्यों ऐसा यह करता इसलिये अपने दांतोंसे जीभ काटकर मरजाना अच्छा! अथवा जलमें कूद कर प्राण दे देना अच्छा, वा तलवारसे ही अपना घात करलेना अच्छा। अरे! नहीं!! नहीं!!! मैं कैसी मूढ हो गई हूं जो धर्मशास्त्रियों द्वारा निषिद्ध आत्मघात करनेकी मनमें ठान रही हूं। हा! आत्मघात करनेके इसविचार को धिक्कार हो। क्योंकि आत्मघातियोंको इस भवमें जो दुःख है वह तो भोगना पडता ही है पर परभवमें भी असह्य कष्टका सामना करना पडता है और जो धर्म कर्ममें दृढ हो शील पालन करते हैं उनको इसभव परभव दोनोंमें सुख ही सुख मिलता है उनकी सर्वत्र इच्छायें पूरी होती हैं। सीता अंजना आदिने कैसा दुःख भोगा पर वे अपने व्रतोंमें दृढ रहीं तो आखिर कैसा सुख पाया। इसलिये मेरा शीलव्रतमें दृढ रहनेका पक्का निश्चय है पर यह कामार्त्त पापी इसतरह न मानेगा इसका किसी न किसी तरह वंचन करके अपना काम निकालना चाहिये। पार पहुंचकर यदि पतिदेवका कुछ पता लगेगा तो ठीक, नहीं तो फिर तपोवन ही शरण है।" ऐसा सोच समझकर सुंदरीने सेठ समुद्रसे उत्तरमें कहा—

"आर्य! आपका कहना अयुक्त है। आपके पुत्रने मुझे आपको अपना पितातुल्य बतलाया था इसलिये आप मेरे पिताके सदृश पूज्य श्वशुर लगते हैं आपके साथ रमण करनेकी मुझे इच्छा न होकर उल्टी घृणा ही होती है। जो लोग श्रेष्ठ होते हैं वे अपने प्राणोंका वियोग उपस्थित होजानेपर भी स्वीकृत वचनोंसे नहीं पीछे हटते हैं, वे समुद्रके समान सर्वथा

वचनमर्यादाका ही पालन करते हैं। अपने निर्मल श्रेष्ठ कुलमें हिताहितके विवेकी पुरुष कभी भी परस्त्रीसंग सरीखे पापसे जायमान कलंकसे दूषण नहीं लगाते–वे सर्वदा उत्तमोत्तम कार्योंके करनेसे अपनी निर्मल कीर्ति ही विस्तारते हैं। इसके सिवा अपनी उच्च कुलमें जन्म पानेकी यादकर भी मेरा मन ऐसे निकृष्ट कार्य करनेमें अग्रसर नहीं होता।"

श्रीमतीके उपर्युक्त साहस भरे हित वचनोंको सुनकर भी मूढ़ सेठका हृदय न पिघला। उसके उन वचनोंसे शांति न हो कामाग्निकी दाह प्रबल ही हो निकली। वह और भी धीठ होकर बोला—

"अयि! मनस्विनि! तू जो कुछ भी इससमय कह रही है वह सब सच है उसे मैं भी रत्ती रत्तीभर जानता हूं पर तुझे देखकर मुझे कामने इसतरह वेहोश करदिया है कि मेरे लज्जा विवेक आदि समस्त गुण नष्ट हो गये हैं। मैं कंदर्परूपी सर्पके विषसे ऐसा मूर्च्छित हो गया हूं कि सिवा तेरे सुरतरूपी अमृतका पान किये चंगा होही नहीं सक्ता। तैने जो इस परपुरुष सेवनको अकार्य बतलाया वह कथंचित् ठीक है पर सर्वथा वह अकार्य ही नहीं है। ऐसे सैकड़ों और हजारों दृष्टांत श्रुति और पुराणोंमें मिलते हैं जो एक पुरुषके सिवा अन्य कई पुरुषोंसे स्त्रीके भोग करनेपर भी वह सती ही बनी रही है उसका शीलव्रत दूषित नहीं हुआ। देख! द्रौपदीने अपने पिता पुत्र तुल्य युधिष्ठिर नकुल आदि अपने पति अर्जुनके सिवा शेष चारों पांडवोंसे भी यथेष्ट काम क्रीड़ायें कीं पर उसे कोई व्यभिचारिणी नहीं कहता। सब लोग सती साध्वी कह कर

ही पुकारते हैं। समस्त स्मृति और पुराणोंके वेत्ता, देवेंद्र न-रेंद्रोंकर वंदनीय भारद्वाज मुनिकी क्या तुझे कथा नही मालूम है वे इतने भारी विद्वान होनेपर भी अपनी भावजके साथ सं-भोग करनेपर सन्नद्ध हुये थे। यदि परस्त्रीसंसर्ग पाप ही होता तो इतने बडे शास्त्रज्ञ उस कुकर्ममें कैसे प्रविष्ट होते। इ-सके सिवा यह शास्त्रका भी वचन है कि जो पुरुष वा स्त्री स्वयं इच्छाकर आये हुये पुरुष वा स्त्रीके साथ संभोग नहीं करता उसको अवश्य ही ब्रह्महत्या लगती है इसमें कोई भी संदेह नही है। इसलिये हे तन्वि! समस्त भय छोड मेरी इच्छा पूर्णकर मुझे सुखी बना।"

सेठकी इसप्रकार कुयुक्ति और कुत्सिततापरिपूर्ण वचन प्रणालीको सुनकर श्रीमती बोली—

"महाबुद्धिके धारक हे श्वशुर! आप जो कुछ कह गये है वह आपको शोभा नहीं देता। आपने साक्षात् व्यभिचारको जो द्रौपदी आदिके दृष्टांत देकर मुझे शील समझानेका प्रयत्न किया है वह ठीक नहीं। क्योंकि एक तो सब कुछ होनेपर भी लोकमें श्वशुर और बहूका संगम निंदनीय है-प्रशंसनीय नहीं। दूसरे पृथ्वीतलको अपने शीलकी पवित्रतासे पवित्र करने-वाली द्रौपदीके विषयमें बात कही वह सर्वथा अयोग्य है। वास्तवमें उसके एक अर्जुनके सिवा कोई दूसरा पति न था। युधिष्ठिर आदि चारो भाई पिता पुत्रके समान थे। लोगोंने जो किंवदंती उसके पंचभर्तारी होनेकी उडा रक्खी है वह स-र्वथा कल्पित मिथ्या है। किसी विषयांधकी गढी हुई है। भार-द्वाजका जो दृष्टांत दिया वह भी ठीक नहीं जंचता। क्योंकि

आप सरीखे विषयांध पापियोंका इस पृथ्वीपरसे कभी लोप नहीं हुआ पहिले भी वे विद्यमान ही थे और आपने स्वयं आये हुये पुरुष वा स्त्रीके न भोगनेसे ब्रह्महत्याके समान पाप होनेका भय दिखलानेवाला शास्त्रवाक्य सुनाया वह भी युक्त नहीं है क्योंकि उसके ठीक होनेपर तो व्यभिचार कोई पाप ही नहीं ठहरता और जब पाप नहीं तब उसी शास्त्रमें व्यभिचारियोंको शिरश्छेद आदि दिये जानेवाले दंडोंका विधान ही अयुक्त ठहरता है। जो सात्विक प्रकृतिवाले धर्मात्मा पुरुष होते हैं वे एककी तो क्या बात हजारों कष्टोंके पडनेपर भी कभी अपनेसे अयोग्य कृत्यमें प्रवृत्त नहीं होते। चाहैं कितने भी कष्ट आपडें और कैसी भी भूंख लग रही हो पर सिंह कभी अपने आहारके अयोग्य घास फूंस नहीं खा सका इसीप्रकार कामकी तीव्र बाधा होनेपर भी धर्मात्माओंके मन कभी कुकर्म करनेमें अग्रसर नहीं होते। जिन पुरुषोंके कमजोर दीन हृदय पुंश्चली स्त्रियोंके कटाक्ष बाणोंसे विद्ध हो खंड खंड होजाते हैं अपने सुकृत्यको छोड उनकी ही आज्ञामें चलने लगते हैं तो जिसप्रकार दूसरी स्त्रीसे सेवित पुरुषको पहिली स्त्री ईर्षाकी दृष्टिसे देख निकलती है उसीप्रकार उन पुरुषोंको भी इहलोक और परलोक दोनोंकी संपत्तियां बुरी निगाहसे देखने लगती हैं वे उनके पास तनिक भी नहीं फटकतीं। इसके विपरीत परस्त्रियों द्वारा अपने भ्रूधनुषपर चढाकर फेंके गये कटाक्षरूपी बाणोंसे जिनका शीलरूपी दृढ कवच भिन्न नहीं होता उनकेलिये समस्त संसार अपना मस्तक नमाता है-उन्हें दोनों लोककी संपत्तियां स्वयं आ प्राप्त हो जाती हैं। जिस कार्यके कर-

जैसे अपने कुलमें कलंक लगता है, निर्मल यश दूषित होता है उस साक्षात् दुःखदेनेवाले कुकर्मको ऐसा कौन बुद्धिमान पुरुष है जो सुख प्राप्त करनेकी इच्छासे करता है। जो सज्जन पुरुष हैं वे बहुतसे विवाह अपनी संतानकी बढवारीकेलिये करते हैं परंतु जो मूर्ख हैं वे उन्हींमें कामाग्निकी शांतिकेलिये आसक्त हो नाना पाप उपार्जन करते हैं और अंतमें नरकमें पड नाना दुःख भोगते हैं। जिसप्रकार पडी हुई मेघकी धारासे हत हो वृषभ नीचेको गर्दनकर चले जाते हैं उसीप्रकार सज्जन धर्मात्मा पुरुष भी परस्त्रियोंको सामने पडती देख नीचेको निगाह कर एक तरफसे चले जाते हैं। अपनेको देखकर कामके बाणोंसे जर्जरित हो स्वयं समीपमें आई हुई भी परस्त्रियोंको देखकर जो कामसे पीडित नहीं होते-उन्हें तिरस्कारकी दृष्टिसे ही देखते हैं वे वास्तवमें महाव्रती हैं। उनके महाव्रत है-उनसे ब्रह्महत्याके समान पाप नहीं लगता बल्कि उनके सेवनेसे ही उल्टा पाप होता है। जो महात्मा दूसरोंकी स्त्रियोंको मा बहिन बेटीके समान समझता है और धनको मिट्टीके ढेलेके समान जानता है उसीका संसारमें निर्मल यश विस्तृत होता है। एकबार पातालमें कोसों दूरीकी जडको धारण करनेवाला सुमेरु पर्वत हिल जा सका है, समुद्र अपनी मर्यादाका भंग कर सक्ता है पर पवित्र सतियोंका दृढ गंभीर मन कभी भी दुश्चरित्रोंसे चल विचल नहीं हो सका। प्राण जांय तो जांय पर सतियां अपने शीलमें कभी भी दूषण नहीं लगा सक्तीं। इसलिये मैं कभी भी तुम्हारी बातोंसे सम्मत नहीं हो सक्ती-मैं सिवा अपने पति जिनदत्तको छोडकर किसीसे भी कामाग्निकी दाह

बुझानेपर राजी नहीं। देखो मेरी तो क्या बात? मैं तो सैनी पंचेंद्री हित अहितकी जाननेवाली मानुषी हूं पर जो सामान्य अत्यल्प ज्ञानकी धारण करनेवाली एकेंद्री मनरहित पद्मिनी वनस्पति है यह भी अपने पति सूर्यदेवके अंतर्हित होनेपर सर्वथा सुंदर और शीतल चंद्रमाके रहनेपर भी उसकी ओर झांककर भी नहीं देखती। शेष नागके शिरपरकी मणि चाहें कोई छूले और सिंहके गर्दनके बाल चाहें कोई अपनी मुट्ठीमें भरले पर सतियोंके पवित्र शरीरको कोई भी अपवित्र मनुष्य अपने शरीरसे नहीं छूसका। इसलिये हे हिताहितके विचारनेमें प्रबल बुद्धिके धारक! तुम अपने मनको सर्वथा शुद्ध बनाओ। अबतक जो अशुद्ध भावोंसे गंदा हृदय हो रहा है उसे उन भावोंको निकालकर पवित्र कर डालो।"

श्रीमतीके इसप्रकार पवित्र उपदेशके वाक्योंको सुनकर सेठ क्रोधसे आगबबूला होकर बोला—

"अरी! मूर्ख! तुझे मैं अच्छी तरह जानता हूं। तू बड़े ही कठोर हृदयकी अर्द्धदग्धा पंडिता है। अरे! तुझे ब्रह्माने वास्तवमें मुझे संताप देनेकेलिये ही सुंदरी बनाया है। तू ऊपरसे ही भोली भाली, लावण्यके चाकचिक्यसे देदीप्यमान, मुखकी कांतिसे पूर्णिमाके चांदको भी लजानेवाली है पर भीतरमें बड़ी ही दुष्ट विषबेलके समान है। हे दुर्बुद्धे! तू जैसी ऊपर है वैसी ही भीतर भी क्यों नही हो जाती। इससमय मैं तुझसे अन्य कुछ नहीं चाहता। केवल इतनी ही कहता हूं कि तू मुझसे अपने संगमकी कुछ दिनोंके बादकी प्रतिज्ञा करले जिससे फिरहाल मैं आशामें ही दिन बिताऊं और तेरे मुखकी कांतिको

आशाभरे नेत्रोंसे पी पीकर ही अपना जीवन कायम रक्खू। अन्यथा यदि तू ऐसा न करेगी तो मैं तेरे सामने इसीसमय तेरे प्रेममें आसक्त होनेके कारण निराशासे प्राण छोड दूंगा और द्विज देवोंके भक्त समस्तजनोंके प्रिय मेरे इसतरह मरजानेसे पाप तेरे मत्थेपर पडेगा।"

राजपुत्री श्रीमतीने जब इसप्रकार सेठका आग्रह समझा और वर्तमानमें हानिके बदले अपना लाभ ही देखा तो उसने अपने मनके भावको मनमें ही छिपाकर सेठके अभिप्रायानुसार ही यों कहा—

"अच्छा! यदि आपका अधिक आग्रह ही है और मनोरथकी सिद्धि विना हुये अपने प्राणतक छोडनेको तयार हैं तो कृपाकर छ महीनेतक ठहर जाइये। मैं जबतक अपने पति देव के नामसे ही समस्त कृत्य करूंगी फिर उसके बाद आप जैसा कहेंगे करने लग जाऊंगी। क्योंकि विना पतिके मैं जन्म विता नहीं सक्ती और आपसे श्रेष्ठ पति मिलना कठिन ही नहीं बल्कि असंभव भी है। आप समस्त युक्त अयुक्तके विचारनेमें चतुर हैं विवेकी वृद्ध हैं आप जो कुछ कहते हैं वह सब ठीक है उसके करनेसे मेरी कुछ क्षति नहि हो सक्ती।"

सेठ समुद्र श्रीमतीके इसप्रकार अपने अनुकूल वचन सुनकर लंबी श्वांस खींचकर बोला-"सुंदरी! मैं इसे स्वीकार करता हूं पर छ महीने बहुत होते हैं। अच्छा! जब तेने मेरे अभिप्रायको सिद्ध करना स्वीकार ही करलिया है और उससे कामने मुझे संताप देना कम करदिया है तो मैं तबतक किसी न किसी तरह अवश्य ही ठहरूंगा।"

इसप्रकार उन सेठ और राजपुत्री श्रीमतीमें जब समझौता हो गया तो वे उससमय किसीप्रकार शांत होगये। इसके कुछ ही दिनोंके बाद जहाज घाटपर आलगा और यह देख सब-लोग मनमें खुशी होने लगे।

श्रीमतीने यद्यपि वचनसे छहमहीने बाद सेठकी पत्नी होना स्वीकार करलिया था पर मनमें उसे उससे बहुत ही घृणा थी। वह वैसा करना महानीच कार्य समझती थी इस-लिये सेठके पंजेसे किसीप्रकार निकलनेकी इच्छाकर उसने अ-पने भृत्योंसे कहा-आज मुझे बहुत प्यास लग रही है इसलिये सेठसे कहो कि आज नदीके किनारे वृक्षोंकी छायामें ही वि-श्राम करें। श्रीमतीकी यह अभिलाषा सुन सेठने उसकी र-क्षामें नौकरोंका प्रबंध कर वहीं रहना स्वीकार करलिया और स्वयं भेट लेकर राजाकी सेवामें चल दिया। सेठके नगरमें च-लेजानेपर श्रीमतीकी रक्षामें नियुक्त पुरुष तो नौकाओंसे क्रीडा करनेमें लग गये और इस अवसरको अच्छा समझ वह स्नानके बहाने अपने खास खास भृत्योंको लेकर चंपा नगरीमें आये हुये एक वणिकोंके झुंडमें जा पहुंची एवं अपना समस्त पूर्व समाचार उनको सुना आश्रयदान चाहने लगी। श्रीमतीके वृ-त्तांतको सुनकर उन वैश्योंके प्रधानने उसे आश्वासन दिया और पुत्रीके समान उसे समझकर निशंक हो अपने साथ च-लनेको कहा। क्रम क्रमसे चलकर वैश्योंका समुदाय और श्री-मती दोनों चंपानगरीके बाहिर उद्यानमें पहुंचे और वहां श्रीजै-नमंदिरको देखकर श्रीमती उसमें बडे ही आनंदसे जयजय शब्दोंको करती हुई प्रविष्ट हो गई।

जिनदत्तकी प्रथम स्त्री विमलमति जिसको वे छोड़कर धन उपार्जन करनेकेलिये परदेश गये थे वह उनके वियोगमें पूर्व पाप कर्मकी शांतिके लिये उसी मंदिरमें धर्मध्यान किया करती थी। उसने ज्यों ही इस श्रीमतीको अपने समस्त परिवारसे वेष्टित उदासीन देखा तो जिनद्र भगवानकी स्तुतिके बाद सामायिकादि कर चुकनेपर कुशल क्षेमका प्रश्न किया। जिसके उत्तरमें बहुत कुछ समझानेपर दुःख और शोकके साथ श्रीमतीने कहा—

"बहिन! मेरी कथा बडी ही दुःखदायिनी है। स्नेहसे पीडित प्राणियोंको इससंसारमें पैंड पैंडपर दुःख उठाने पडते हैं। वज्रकी सांकलोंसे बंधे हुये प्राणियोंका छूटना किसी प्रकार होसक्ता है और फिर वे नहीं बंध सके परंतु स्नेहरूपी जालसे जिकडे हुये प्राणियोंका जन्म जन्ममें छूटना न होकर बंधना ही होता चला जाता है। इस संसारमे जीवको सर्वदा चारों गतियोंमें भ्रमण करानेवाले उनके शुभाशुभ कर्म ही हैं पर वे भी इसी स्नेहके कारण ही उत्पन्न होते हैं और उस स्नेहके उत्पन्न करनेमें भी कारण इंद्रियविषय हैं। यदि विषय भोगनेकी इच्छाका सर्वथा नाश हो जाय तो स्नेह और द्वेष भी न रहें इसलिये जो भोगोंसे सर्वथा निस्पृह हैं वे तो अनंत मोक्षके नित्य सुख भोगते हैं और जो हमसरीखे विषय लोलुपी नराधम हैं वे शहद लपेटी छुरीके समान प्रथम ही अच्छे लगनेवाले इंद्रियविषयोंको ही चाटते चाटते इस अनंत दुःखमय संसारमें दुःख उठाते फिरते हैं।"

इसप्रकार अत्यंत शोकपरिपूर्ण वचनोंमें अपने वृत्तांतकी

भूमिकाको कहती हुई श्रीमतीको विमलमति वीचमें ही रोककर धैर्य बंधानेकेलिये कहने लगी—

"प्यारी वहिन! अधिक शोक करनेकी आवश्यकता नहीं है जो जैसा जिसके भाग्यमें सुख दुःख होना होता है वह अवश्य ही होकर मानता है उसको विपरीत यदि इंद्र भी करना चाहे तो नहीं कर सका। स्नेह और द्वेष ये दोनों भी पूर्वकर्मके अनुसार ही होते हैं और चिंता करनेसे राति दिन उसीके कारण ही बढते चलते हैं। इसी कर्मके ही कारण यह जीव क्षणभरमें सुखी, क्षणभरमें दुःखी, क्षणभरमें दास क्षणभरमें स्वामी और क्षणभरमें इष्ट जनोंके वियोग, अनिष्ट जनोंके संयोगसे संयुक्त हो जाता है। सखि! जिस संसारमें रूप, लावण्य और सौभाग्यके भंग हो जानेमें कुछ भी देरी नहीं लगती उसमें सुख कैसे हो सकता है? हर्ष विषाद आदि परस्पर विरुद्ध भावोंके उदय होनेमें जहां पलक मारनेके समान भी देरी नहीं लगती वहां प्रेमकी स्थिरता कहां रह सकती है? हे सुलोचने! हम स्त्रियोंका जन्म इस संसारमें बडा ही निकृष्ट है जो सबसे अधिक प्यार करनेवाले मा बाप भी हमें दूसरोंके लिये ही पाल पोषकर बढाते हैं, अनर्थकारी यौवनके प्रारंभ होनेपर कामजन्य सुखोंमें लिप्त हो हम सर्वथा पतिके जीवनाधार ही हो जाती हैं और उस [पति] के विरक्त होजाने पर पालेके पडनेसे कमलिनीके समान मानसिक संतापोंसे दग्ध हो सुखने लगती हैं। इसके सर्वथा भंग हो जानेसे अंतरंगमें सार शून्य हुई वाहिरसे ही केवल मनोहर लगने वाली, अलंकारोंसे सर्वथा रहित हम

लोगोंके चरित्रको चाहें वह निर्मल ही क्यों न हो तो भी शंकासे लोग दूषित ही समझने लगते हैं। जिसप्रकार कुकवियोंकी कविता ओज प्रसाद आदि काव्यके गुणोंसे सर्वथा रहित होती है, कष्टपूर्वक बनाई जाती है और अपशब्दोंसे भरी रहती है इसलिये उसकी कोई कदर नहीं करता उसीप्रकार हम पतिविरहिता [विधवा] होनेसे कष्टपूर्वक तो जीवन व्यतीत करती हैं, प्रसन्नता हास्य आदिसे सर्वथा शून्य रहती हैं और अपशब्दोंसे ही पुकारी जाती हैं। अतः इस निंदनीय स्त्रीपर्यायका अंत करनेकेलिये समस्त संसार की संपत्तियोंको प्रदान करनेवाले जिनेंद्र भगवानके शासनमें ही मन और भक्ति लगाना ठीक है। उसीके सेवनेसे हमारा कल्याण होगा। सुख और दुःख जब इससंसारमें समस्त जीवोंको समान ही हैं किसीको भी चिरस्थायी सुख नहीं तब वह हमें ही कहांसे मिल सक्ता है इसलिये पूर्व उपार्जित कर्मके फलको भोगनेके लिये हमें सर्वदा तयार रहना चाहिये। अपने मनको स्थिर रख सर्वदा कर्मके फलोंको भोगना चाहिये।"

इसप्रकार विस्तारपूर्वक विमलमतिसे समझाई गई उस श्रीमतीने अपना और अपने पतिका समस्त वृत्तांत उससे कह डाला। उसे सुनकर विमलमतिने जब उसके पतिकी रूप चेष्टा आदि पूछीं तो वे भी उसने कह दीं जिसें सुनकर विमलमतिके मनमें एक अद्भुत तरंग उठी उसने सोचा--'हो, न हो, यह मेरा पति जिनदत्त ही तो नहीं है। इसकी बतलाई सब चेष्टायें उनसे मिलती जुलती ही मालूम प-

डती है। अथवा इस हुए संकल्पको धिक्कार हो। मनसे विना निश्चय किये इसप्रकारके भाव करना सर्वथा अयोग्य है। दुनियांमें एक तरहके अनेक मनुष्य होते हैं। बहुतसे रूप और चेष्टायोंमें समान होते हैं पर रहते भिन्न भिन्न हैं। यह भी [इसका पति] कोई मेरे पतिसे भिन्न ही होगा." इसके बाद विमलमतिने अपना समस्त वृत्तांत भी उसे कह सुनाया जिससे समान दुःखवाली वे दोनों बहिनके समान परस्पर प्रेमवाली हो नित्य स्वाध्याय व्रत आदिमें तत्पर रहने लगीं और ठीक ठीक समस्त पतिके वृत्तांत ज्ञात होने पर यदि उनका संयोग न हुआ तो मोहका मथन करनेवाला जिनेंद्रका तप तपेंगी ऐसा दृढ विचार कर रहने लगीं।

इसी बीचमें सज्जनोंका प्रेमी विमलमतिका पिता सेठ विमल भी श्रीमतीके आगमनका समाचार सुन वहां आया और जिनेंद्र भगवानकी भक्ति पूजाकर चुकनेके बाद उनके समीप पहुंचा। पिताको समीप आया देख उन दोनोंने प्रणाम किया। उसके बाद श्रीमतीकी कुशल क्षेम पूछी। उसके उत्तरमें श्रीमतीने अपनी सखी विमलमतीकी तरफ नीची निगाह कर वृत्तांत कहनेकी इच्छा प्रकटकी। जिससे विमलमतिने भी उसका समस्त वृत्तांत अपने पिताको कह सुनाया।

श्रीमतीका वृत्तांत सुनकर सेठ विमलको बडा ही दुःख हुआ उसने समस्त लोकको आनंद करनेवाले उसके सौंदर्य और यौवनको पतिके वियोगसे कलंकित करनेवाले दैवको बार बार धिक्कारा और अमृतमें विष मिला देनेवाले मूर्ख भाग्यकी खूब ही निंदा की। अंतमें असाता वेदनीय

कर्मकी कृपासे संसारमें समस्त प्राणी दुःख भोगते हैं यह जानकर श्रीमतीसे कहा—

" प्यारी पुत्री ! शोक छोड़कर यहां ही अपनी इस बहिन के साथ रह और धर्म ध्यानमें मन लगा । धर्मके प्रभावसे तुम दोनोंका शीघ्र ही असाता वेदनीय नष्ट हो जायगा और तब तुम्हें अवश्य ही अभीष्ट सुख प्राप्त होगा । तू यह निश्चय समझ । तेरा और इस विमलमती दोनोंका एकही पति है किसी न किसी शुभ कारणसे तुम दोनोंके मनोरथ सफल हुये हैं जो समान आकृतिवाली तुम दोनोंकी भी संगति हो गई हैं । तेरे पतिका अबतक पूरा पूरा समाचार न मिले तब तक इसी जगह रह और धर्म ध्यानसे काल बिता । ऐसे करने से ही कल्याण होगा ।"

इसप्रकार अच्छी तरह समझा और धैर्य बंधाकर सेठ विमल तो अपने घर चले गये और वे दोनों परस्परमें प्रीति युक्त हो वहां ही जिनेंद्रकी पूजा, पात्रके दान, जैन शास्त्रके स्वाध्याय, और मुक्तावली आदि व्रतोंके आचरणोंसे कामकी इच्छारहित हो दिन बिताने लगीं एवं पृथ्वीपर अवतीर्ण हुई कीर्ति और लक्ष्मीके समान शोभित होने लगीं ।

इसप्रकार श्रीमद्भगवद्गुणभद्राचार्य विरचित जिनदत्तचरित्रमें पांचवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५ ॥

छठवां सर्ग।

जिस समय हमारे चरितनायकने गिरी हुई वस्तुको उठानेके लिये समुद्रमें डुबकी लगाई और कार्य सिद्ध हो जानेपर ऊपर उछाल मारी तो अपना आलंबन भूत रस्सा कटा पाया एवं जहाजका निशान तक उस जगह न देखा। यह देख वे सेठकी चालाकी समझ गये और मनमें यह सोचकर कि 'सज्जनोंका मन सुखमें तो मक्खनके समान कोमल होता है पर विपत्ति-दुःखमें वह पत्थरसे भी अधिक कठोर हो जाता है' अपनी भुजाओंसे समुद्रमें तैरना प्रारंभ कर दिया। हाथोंसे तैरते तैरते ये कुछ दूर ही पहुंचे थे कि इतनेमें इन्हें एक काठका टुकडा मिल गया। उसे पाकर ये बडे ही प्रसन्न हुये। उसे मित्रके समान ये कभी तो पैरोंसे आलिंगन कर तैरने लगे, कभी पीठसे सहारा ले जलमें बहने लगे और कभी उदर तथा कटिका आश्रय ले निःशंक हो आगे बढने लगे।

इसप्रकार विकट चंचल गंभीर समुद्रमें हमारे चरितनायक तैरते चले जाते थे कि मार्गमें सुंदर आकारके धारक दो पुरुष आकाशमें जाते हुये इन्हें मिले। उनमेंसे एकने इन्हे लक्ष्यकर ताडनापूर्वक कहा—

"रे! रे!! तुच्छ मनुष्य!!! तू यहां कहां तैर रहा है! क्या तुझै नहीं मालूम? इस जगह हम लोग रहते हैं। हमारे स्थानपर हमारी बिना आज्ञाके इंद्र भी चाहें तो नहीं कीडा कर सका फिर तुझ सरीखे क्षुद्र शक्तिके धारक मनुष्यकी तो

बात ही क्या है? अथवा इसमें तेरा कोई अपराध नहीं है तेरी बदनसीबी ही तुझे यहां ले आई है और इसीलिये किसी ठगिया जालसाजकी बातोंमें आकर तू हमारे निवासको विना जाने ही अपने पैरोंसे गंदा कर रहा है।"

आकाशगामी पुरुषकी ज्योंही तर्जनाभरी वाणी जिनदत्तने सुनी उन्होंने शीघ्र ही अपना दक्षिण हाथ तो कमरमें लिपटी हुई तलवार पर रख लिया और बांये हाथसे फलक (काष्ठ खंड) को थामकर क्रोधके तीव्र आवेशमें आकर निःशंक हो कहा—

"ऐ व्यर्थकी दूरसे ही बातें बनानेवाले! घमंडमें चूर पुरुष! क्यों गीदड़ भवकी दिखा रहा है। यदि तुझमें कुछ भी सामर्थ्य है तो शीघ्र ही समीप आ! फिर देख तू कैसा मजा चखता है। आकाशमें चलने फिरनेकी केवल सामर्थ्य रखलेनेसे ही अपनेको जगतमें श्रेष्ठ मत समझ। आकाशमें तुझसरीखे भयसे व्याकुल चलनेवाले तो पक्षी भी होते हैं। निरंतर इंद्रिय विषयोंमें लिप्त रहने वाले इंद्र आदि शायद तुझसरीखे क्षुद्रोंकी डरावनीमें आजाते होंगे परंतु मैं मल्ल निर्भय मनुष्य हूं कभी भी तुझसरीखोंकी पर्वा नहि कर सक्ता। यदि कुछ शक्ति रखता हो तो आ और निःशंक हो अस्त्र छोड। क्या तुझे नहीं मालूम? सिंह चाहें कितने भी प्रमाद और असावधानताके ढंगसे सोता हो उसकी गर्दनके बाल कभी भी तुच्छ डरपोक हिरण नहीं उखाड सक्ते।"

अपने वाक्योंके उत्तरमें इसप्रकार दूने क्रोध और तिरस्कारके भरे जिनदत्तके वाक्योंको सुनकर उस गगनगामी पुरुषने नम्र हो कहा—

"हे महा सत्त्वके धारक निर्भय धीर पुरुष ! आप क्रोध छोडकर प्रसन्न हूजिये । मैंने आपकी परीक्षा ली थी उसमें जो कटु वाक्य निकल गये उन्हें क्षमा कीजिये और मेरी प्रार्थनाको सुनिये-विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिणश्रेणीमें रथनूपुर नामका एक विद्याधरोंका नगर है । उसके स्वामी अशोकश्रीके विजया महारानीके गर्भसे उत्पन्न शृंगारमती नामकी एक श्रेष्ठ सुंदर कन्या है । जिससमय वह विवाहके योग्य समझी गई और पिताने उसकेलिये विद्याधर कुमार तलाश किया तो उसने विद्याधर मात्रके साथ विवाह करनेकी मनाई करदी । उसके बाद ज्योतिषीसे पूंछने पर मालूम हुआ कि जो समुद्रमें अपनी भुजाओंसे तैरता हुआ मिलैगा वह ही इसका पति होगा । ज्योतिषीके वचनानुसार अशोकश्री महाराजने तबसे हम दोनोंको यहां समुद्रके तैरनेवाले पुरुषको देखनेके लिये नियुक्त कर दिया है । हम लोगोंका नाम वायुवेग और महावेग है । आज हमारा मनोरथ सफल हुआ जो पुण्यशाली आपके दर्शन हो गये ।"

इसप्रकार विद्याधरकुमारोंने अपना वृत्तांत सुनाकर जिनदत्तको समुद्रसे बाहिर निकाला और तटपर स्नान करा वस्त्र आभूषणोंसे सुसज्जितकर विमानमें बिठा अपने नगर ले गये ।

रथनूपुर नगरके अधिपति अशोकश्रीने जिससमय कुमार जिनदत्तके स्वरूपको देखा उससमय वह अवाक् रह गया । उसने हर्षसे रोमांचितगात्र हो सोचा-अहा ! यह बडा ही सुंदर युवा है । कहीं यह साक्षात् कामदेव तो नहीं आ गया । अन्यथा इसप्रकारकी रूप और लावण्यकी महिमा

अन्यत्र कहां हो सकती है अथवा संसारमें एकसे एक बढ़िया पुरुष रहते हैं कोई कोई ऐसे भाग्यशाली भी हो सक्ते हैं जिनकी सुंदरताको देख कामदेव भी लज्जित हो जाता है। जैसा मैं कन्याका वर गुणी विद्वान् सुंदर चाहता था वैसा ही यह कन्याके पुण्यप्रभावसे मिल गया।"

इसप्रकार शृंगारमतीके पिताने जिनदत्तको सर्वथा उसके योग्य समझकर शुभमुहूर्त और शुभ दिनमें विवाहकर दिया एवं जिनदत्त भी कुछ दिन वहां रहकर अपनी कांताके साथ श्वशुरसे दिये गये उपहारको ले अपने नगरकी ओर चलदिये।

छोटी छोटी घंटरियोंके शब्दोंके करनेसे महामनोहर लगनेवाले, ध्वजाओंसे मंडित, मोतियोंकी मालासे सुसज्जित बहुत लंबे चौड़े विमानमें बैठकर मार्गको तय करते हुये जिनदत्त और शृंगारमती आकाशसे चले जारहे थे कि इतनेमें चंपापुरी आगई और रात्रि पडगई। रात्रिके हो जानेसे जिनदत्तने अपनी प्यारी शृंगारमतीसे कहा-प्रिये! पहिले मैं सोया जाता हूं और तू जागती रहना। "इसके बाद थोड़ी देर सोकर फिर कहा-मैं सो लिया अब तू सोजा। मैं यहां तेरे सामने ही जागकर बैठा हूं।" पतिकी आज्ञानुसार शृंगारमती जब खूब सोगई तो जिनदत्त कुछ अपने मनमें विचार कर वहांसे कहींको चलते बने। कुछ समय बाद जब शृंगारमतीने करवट बदला और उसकी आंख खुली तो अपने पतिको समीप न पा चौंक पड़ी एवं निर्जन जंगलके समान शूनसान भयंकर विमानको देखकर संघभ्रष्ट हरिणीके समान इसप्रकार करुणोत्पादक रुदन करने लगी—

"हा! प्राणाधार प्रियतम! आप मुझ अबलाको एकाकिनी इस शून्य प्रदेशमें छोड कहां विना कुछ कहे सुने ही चले गये। मैं आपके वियोगको क्षणमात्र भी नहीं सह सक्ती। यदि आप मुझसे इसप्रकार छिपकर हंसी कर रहे हैं तो कृपाकर शीघ्र ही इस मर्मभेदी मेरी छातीको फाडनेवाली दिल्लगीको संकुचित कर लीजिये। क्या आपको नहीं मालूम? जिसप्रकार शीतल भी पाले (हिम) का समूह मालती पुष्पकी कलीको मुरझा देता है उसीप्रकार आनंददायी भी इस समयका यह आपका हास्य मुझे अकथनीय दुःख पहुंचा रहा है। अथवा हे प्राणेश्वर! आपको किसी अन्य वैरी विद्याधरकी कन्याने हर लिया है परंतु स्वप्नमें भी किसीका कुछ अनिष्ट न करनेसे यह भी संभव नहीं होता। हा! अब मालूम हुआ! इसमें किसीका भी दोष नहीं है सब मेरे पूर्वोपार्जित अशुभ कर्म ही मुझे फल दे रहे हैं, नियमसे मैंने पूर्व भवमें निःशंक क्रीडा करते हुये राजहंसी रासहंसमेंसे राजहंसको कुंकमादिसे भिन्न रंगका कर वियुक्त किया होगा। अथवा रतिकालमें अपनी प्यारीके संगमका उत्सुक चक्रवाक किसी चक्रवाकीसे वियुक्त कर दिया होगा। अथवा अपने भर्तारके सहवासकी लोलुपी कोई अपनी सपत्नी स्त्री कामाग्नि बुझानेसे किसी न किसी प्रकार रोक दी होगी। इन ही समस्त पापोंका अवश्य ही भोग्य फल मुझे इस जन्ममें प्राप्त हुआ है। हे नाथ! मैं इस निर्जन जंगलमें रहकर क्या करूं? यदि आप मुझे नहीं चाहते घृणा करते हैं तो कृपाकर मुझे अपने मा बापके घर छोड आइये मैं यहांसे अकेली नहीं जासक्ती क्योंकि ऐसा करनेसे आपके वियोगजन्य

दुःखके सिवाय संसारमें मेरी अकीर्ति भी होगी मैंने आजतक अपनी समझमें कोई अपराध नहीं किया है और यदि किया भी है तो भी कृपाकर अन्य कुछ नहीं एकबार दर्शन तो दीजिये आप तो वडे ही करुणावान् थे आपकी इस तरहकी उपेक्षा शोभा नहीं देती।

इसप्रकार हिचक हिचककर रोनेके साथ शृंगारमती विलाप कर रही थी कि इसकी ध्वनि समीपके जिनमंदिरमें रहनेवाली उन पूर्वोक्त दोनों कुमारियोंके कानमें पडी। ज्योंही उन्होंने स्वर-से किसी दुःखिनी स्त्रीकी आवाज पहिचानी तो वे शीघ्र ही उस ध्वनिकी तरफ चलकर वहां आईं और वगीचेके एक वृक्षके नीचे वनदेवीके समान शृंगारमतीको रोती पा उसे समझाने लगीं। कुमारियोंके यथार्थ समझानेसे शृंगारमतीका दुःख बहुत कुछ घट गया और वह अपने विमान आदिको समेट कर जिनमंदिरमें चली आई। जिनेंद्र भगवानके भक्तिपूर्वक दर्शन कर चुकनेके बाद वे तीनों एक जगह बैठीं और सबसे पहिले शृंगारमतीका चरित सुन अपना चरित सुनाने लगीं एवं इस-प्रकार उसे समझाने लगीं—

"सखि विद्याधरपुत्रि! बहिन! शोक मतकर। शोक कर-नेसे अभीष्ट सिद्धि नहीं होती। देख! हम दोनों भी तो तेरे ही समान पतिसे वियुक्त दुःखिनी हैं। इस दुःखोंके खजाने रूप चतुर्गति संसारमें अपने अपने कर्मोंके अनुकूल घूमते हुये प्रा-णियोंको सैकडों और हजारों इससे भी महान् महाबलवान् दुःख भोगने पडते हैं इसलिये विषादकर और भी अशुभ कर्मोंका उपार्जन करना उचित नहीं।" विमलमती और श्रीमतीके स-

समझानेसे विद्याधरपुत्रीका शोक शांत होगया और वे तीनों एक साथ मिल जुलकर पात्रदान, जिनपूजा, शास्त्रस्वाध्याय और सामायिक आदि धार्मिक कृत्योंको करती हुईं समय विताने लगीं

हमारे चरितनायक कुमार जिनदत्त अपनी प्रियतमा शृंगारमतीको धोखा देकर नगरमें भीतर गये और वौनाका रूप बनाकर इधर उधर गानेसे लोगोंके मनको हरण करते हुये डोलने लगे। धीरे २ इनका नगरमें परिचय बढ़ने लगा और ये गंधर्वदत्त अपना नाम बता लोगोंमें प्रसिद्ध होगये। यहांतक कि ये एकदिन राजदरबारमें पहुंचे और अपने गायनगुणसे राजाको प्रसन्न कर वेतनभोगी दरबारके गवैया हो आनंदसे रहने लगे। एक दिनकी बात है कि राजसभाके समक्ष आकर एक पुरुषने राजासे कहा—महाराज! इसी नगरीके एक जिनालयमें तीन परमसुंदरी नवयुवति स्त्रियां रहती हैं न जाने क्या कारण है जो न तो वे कभी हंसती हैं और न कभी किसी पुरुषसे बात चीत ही करती हैं सिवा अपने धर्मध्यानके उन्हें कुछ सुहाता ही नहीं है।"

उस पुरुषकी यह विचित्र बात सुन राजाने गंधर्वदत्त रूपधारी जिनदत्तकी ओर दृष्टि फेरी। जिसके उत्तरमें उसने (जिनदत्तने) मुस्कराकर कहा—

"महाराज! जब मनुष्यमात्र शृंगारका प्रेमी होता है। तब उनकी तो क्या बात? वे तो स्त्रियां हैं वे अवश्य ही होगीं। मैं अपने प्रयत्नसे वृक्षों तकको विकास और हासले सुसंपन्न कर सका हूं। मनुष्यकी तो फिर बात ही क्या है? तिसपर भी उन स्त्रियोंको तो अवश्य ही कर दूंगा।"

जिनदत्तकी इसप्रकार अहंकारपूर्ण बात सुनकर राजाने अपने कुछ आदमियोंको साथमें जानेकी कह उन्हें उन तीनों स्त्रियोंको प्रसन्न करनेकेलिये भेजा और वे भी अपने पूर्वमें ही किये गये संकेतोंसे सहित हो अपनी मंडलीके साथ २ जिनालयकी तरफ रवाना हुये।

जिनमंदिरमें पहुंचकर जिनदत्तने पहिले तो भगवान्‌की स्तुति भक्ति की और पश्चात् गायन आदिकर अपने साथियों द्वारा प्रार्थना किये जानेपर कहा-अच्छा मित्रो! यदि यही इच्छा है तो तुम लोग सब सावधान हो जाओ। मैं एक बढ़िया कथा कहता हूं। इसके बाद अपना ही समस्त वृत्तांत जो कुछ बीता था वह वसंतपुरसे लाकर चंपापुरीके उद्यानमें विमलमतीके त्याग करने तकका कह डाला। जिसे सुनकर बीचमें ही विमलमती बोल उठी-"तुम्हारी कथा तो बहुत ही अच्छी है। अच्छा! फिर उससे आगे क्या हुआ सो कहो।" इसे सुनकर जिनदत्तके साथियोंने 'अजी! राजमंदिर जानेका समय हो गया कल फिर आकर कहना।' आदि कहकर उन्हें रोक दिया और साथमें ले अपने स्थान चले आये। दूसरे दिन फिर आकर वामनरूपधारी जिनदत्तने अपना चंपापुरीके उद्यानसे आगे जानेका और द्वीपसे लौटते समय समुद्रमें गिरने तकका वृत्तांत कह सुनाया। जिसे सुनकर श्रीमतीने कहा-हां! फिर उससे आगेकी और कथा सुनाइये। फिर क्या हुआ? आपकी कथा बड़ी ही मनोहर है।" इसके उत्तरमें 'क्या हम तुम्हारे अधीन हैं जो कहते ही चले जांय। अब हमारा समय होगया अब तो राजमंदिर जाते हैं।' कहकर जिनदत्त अपनी मंडलीके

साथ चले गये। और श्रीमती एवं विमला भी आश्चर्य साग-रमें डुबकी लगातीं लगातीं किसी तरह समय विताने लगीं। इसके दूसरे दिन फिर मंदिरमें जिनदत्त आये और रथनूपुरसे लेकर शृंगारमतीके छोडने समय तकका वृत्तांत सुनाकर चुप होगये। शेष अग्रिम कथा सुनानेका भी जब शृंगारमतीने आ-ग्रह किया तो यह कहकर कि 'कल सवेरे आकर कहूंगा' अ-पने स्थान चले गये। और उन तीनों स्त्रियोंको प्रसन्न करनेसे राजा द्वारा पारितोषिक पा आनंदित हुये।

एकदिनकी बात है कि नगरमें बडा ही जोर शोरसे को-लाहल हुआ। लोगोंकी कलकलाहट सुनकर राजाने पास बैठे हुये आदमीसे उसका करण पूछा। उत्तरमें उसने कहा—

"महाराज! मलयसुंदर नामका सर्कारी हाथी अपने आ-लान स्तंभको तोडकर मदसे माता हुआ इधर उधर निःशंक घूमता फिरता है। जो कोई पशु वा मनुष्य उसके पंजेमें अ-गाडी पड फंस जाता है वह ही विचारा विना ही किसी वि-लंबके यमराजके मंदिरका अतिथि होजाता है। वह मत्त हाथी किसीको भी नहीं छोडता। जो कुछ उसके सामने परकोट, ब-गीचा, हवेली, देवालय आदि पडते हैं उन्हें ही निर्दय हो ढा-देता है।"

समीपस्थ पुरुषके मुखसे हाथीके इस उपद्रवको सुनकर राजाने अनेक पराक्रमी पराक्रमी श्रेष्ठ वीर उसे वश करनेके-लिये भेजे। जब किसीसे भी वह शांत न हुआ और तीन दिन तक बराबर एकसी ही प्रजामें खलबली मची रही तो राजाने डोंडी पिटवाई कि-जो कोई पुरुष इस हाथीको वश कर लेगा उसे मैं अपनी पुत्री देनेके सिवा सामंतका पद भी दूंगा।"

वामनरूपधारी जिनदत्तने जब यह राजाज्ञा सुनी तो तत्काल ही हस्तीको वश करनेकी ठानली और तदनुसार अपनी चतुराईसे आगें पीछे बगलसे और पेटके नीचेसे आक्रमण कर उसे वश भी करलिया। एवं उसपर सवार हो प्रजाके वाह वाहके शब्द लूटता राजमंदिरमें पहुंच आलानस्तंभसे उसे बांध सुखी हुआ।

इसप्रकार श्रीमद्भगवद्गुणभद्राचार्यविरचित जिनदत्तचरित्रके भावानुवादमें छठा सर्ग समाप्त हुआ॥ ६॥

सातवां सर्ग।

राजाज्ञानुसार जब जिनदत्तने अपने कौशलसे मत्त हाथीको वश करलिया तो राजाने उसे अपनी पुत्रीके प्रदानार्थ मंत्रियोंसे सलाह की कि 'जिस पुरुषके कुलका पता नहीं उसे कन्या किसतरह प्रतिज्ञानुसार दी जाय?" उत्तरमें मंत्रियोंने कहा—

"महाराज! इस शंका करनेकी कोई आवश्यकता नहीं। इस महापराक्रमशाली पुरुषकी आकृतिसे ही इसके मातृ और पितृ कुलकी शुद्धि मालूम पड रही है। जिसप्रकार मेघके आच्छादनसे आच्छन्न सूर्य आकाशमें भ्रमण किया करता है परंतु उसका तेज नहीं छिपता उसीप्रकार अवश्य ही यह कोई विशुद्ध वंशोद्भव पुण्यशाली पुरुष अपने रूपको बदलकर इधर उधर विनोदार्थ घूम रहा है परंतु इसका माहात्म्य किसीसे छिपाये नहीं छिपता। यह महामना अपने पराक्रम, धैर्य,और

विज्ञानसे देवों तकको आश्चर्य उत्पन्न करता है जिसका कुल उच्च नहीं वा दूषित है उसमें ऐसे गुण नहिं हो सक्ते इसलिये निःशंक हो दोनों मातृ पितृ कुलसे शुद्ध इस पुण्यात्माको पुत्री दीजिये। अथवा यदि इसपर भी आप राजी न हों तो इस हीसे इसका कुल जाति आदि पूछ लीजिये।" मंत्रियोंके इन वाक्योंसे सम्मत हो राजाने जिनदत्तसे पूछा-"हे सज्जन शिरोमणि! यद्यपि आकार, विज्ञान, पराक्रम और धैर्य आदि गुणोंसे तुम मुझे निश्चयसे श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न मालूम पडते हो परंतु तो भी यह अनुमान ही अनुमान है। हमारे संदेहको दूर करनेकेलिये कृपाकर प्रसन्न हूजिये और अपना समस्त परिचय दीजिये।" राजाके इस प्रश्नको सुनकर जिनदत्तने कहा-

"महाराज! सच है। आपको विना वतलाये कैसे मालूम हो सक्ता है। मैं वसंतपुरके सेठ वैश्यराज जीवदेवका पुत्र हूं। मेरा नाम जिनदत्त है। मैंने आपके ही नगर निवासी विमलसेठकी एक विमलमति नामकी पुत्रीको व्याहा है। उसके वाद सिंहलद्वीपके राजाकी पुत्री और उसके वाद विद्याधरोंके अधिपति अशोकश्रीकी पुत्रीके साथ भी विवाह किया है। वे मेरी तीनों स्त्रियां इसी चंपापुरीके एक जिनमंदिरमें रहती हैं और मेरे संगमकी वाट हेर रही हैं। देव! मैंने इस जन्ममें बहुसी तो विपत्ति झेली हैं और बहुतसी संपत्तियोंका भोग किया है एवं अनेक विद्यायोंको प्राप्तकर इस जगह अनेक क्रीडायेंकी हैं।

जिनदत्तका यह वृत्तांत सुन और उसके अभिप्रायको जानकर राजाने उन जिनमंदिरवासिनी तीनों स्त्रियोंको बुला भेजा एवं वे भी कंचुकियोंके साथ २ राजसभामें आ उपस्थित

हो गई। उन्हें देख राजाने बड़े प्यारसे पासमें बैठाकर जिनद-त्तको लक्ष्यकर कहा-"हे महासती पुत्रियो! यह पुरुष तुम्हे अ-पनी स्त्री बतलाता है। क्या यह सच हैं?" उत्तरमें उन ती-नोंने एक दूसरेका मुंह देखकर कहा-हे पिता! ये उनका के-वल वृत्तांत जानते हैं पर वे नहीं हैं।" अपनी स्त्रियोंकी यह बात सुन जिनदत्तको हंसी आगई पर वे कपडेसे उसे छिपा गये इधर राजाने यह अचंभेकी बात सुनकर फिर कहा-पुत्रियो! देखो! खूब सोच समझकर बतलाओ। क्या वास्तवमें भी यह तुम्हारा पति नहीं है?" राजाकी यह बात सुनकर पुत्रियोंने फिर भी यही उत्तर देकर कहा-महाराज! अन्यकी तो क्या बात! इनका और उनका तो रंगमें भी सादृश्य नहीं है।, अब अधिक देरतक इसप्रकारकी उलझनमें डाले रहना उचित न समझ जिनदत्तने अपना रंग वही रख सांचारूप दिखा दिया। अब तो वे तीनों स्त्रियां आश्चर्यमें मग्न हो लज्जित हो गई और राजासे बोलीं-'तात! ये ही हमारे पति हैं पर केवल रंगमें ये काले हैं और वे पीले थे।,, स्त्रियोंकी यह बात सुन जिन-दत्तने अपना रंग भी बदल डाला। यह देख उनसे न रहगया वे मोहसे रोमांचित हो शीघ्र ही पति जिनदत्तके पैरोंमें पडगई और जो विरहाग्नि रातिदिन हृदयोंमें धधक रही थी उसे आनंदाश्रुओंसे बुझाकर शांत हुई। उससमय जो पतिके मिल-नेसे उन्हें हर्ष हुआ वह अकथनीय है-उसे कोई नहीं कह सका। अपनी चिरवियुक्त पत्नियोंसे मिलकर जिनदत्तको भी हर्ष हुआ और उससमयकासा उनका यथायोग्य सत्कार-कर पासमें बिठा लिया।

विमलमतिके पिता सेठ विमलको जब यह समाचार मालूम पडा कि उनके जमाई मिलगये हैं तो वे शीघ्र ही राजसभामें आये और राजाको नमस्कारकर जिनदत्तके आलिंगनादिसे परमहर्षित हो उन्हें क्षेम कुशल पूछनेलगे। यथायोग्य सत्कारादिके बाद मौका देखकर राजासे विमलसेठने जिनदत्तको अपने घर जानेकेलिये सम्मति प्रदान करनेको कहा। उत्तरमें पहिले तो राजाने बहुतसी मनाई की पर जब अधिक सेठका आग्रह देखा तो भेजनेकेलिये राजी हो गये। राजाज्ञानुसार जिनदत्तको उनकी स्त्रियों सहित अपने घर लाकर सेठ विमलने उनका खूब ही सत्कार किया और गीत वादित्र आदिसे मंगलाचार प्रारंभ कराया। यह देख नगरकी बहुतसी स्त्रियां जिनदत्तसे मिलने आईं और कुशल क्षेम पूछकर संतुष्ट हुईं। समस्त मांगलिक विधियोंके समाप्त होजानेपर जिनदत्तने अपने सासु श्वसुर आदिको अपनी भ्रमणकथा सुनाई और अपनी प्रियतमाओंसे उनकी बात पूछी। इसके बाद जिनपूजा, अभिषेक आदि धार्मिक उत्सवकर दीन दरिद्रियोंको उनकी इच्छा और आवश्यकतानुसार दान दिया।

चंपानगरीके राजाने सब प्रकारसे संतुष्ट हो जिनदत्तके साथ अपनी पूर्व प्रतिज्ञाके अनुसार शुभमुहूर्त, शुभ लग्न और शुभ दिनमें शुभविधिसे अपनी कन्याका विवाह करदिया एवं बहुतसे वस्त्र आभूषण और देश भेटमें दे इसे सबसे उत्तम सामंत करदिया।

जब कुमार जिनदत्त राजसम्मानसे सम्मानित और यथेष्ट धनाढ्य हो गये तो उन्होंने अपने पिताके पास साथमें नाना

द्वीपोंके रत्नोंको देकर संदेशवाहक भेजे। जिनसे अपने इकलौते पुत्रके सुख समाचार पा सेठ जीवदेवको अपार आनंद हुआ। जिसप्रकार चंद्रमाके उदयसे समुद्र अपने अंगमें नहीं समाता बढकर आगे बढ जाता हैं उसीप्रकार सेठ जीवदेवका हर्ष हृदयमें न समा रोमांचोंके छलसे बहिर निकल पडा। उन्होंने शीघ्र ही कुछ आदमी अपने पुत्र जिनदत्तके पास उन्हें लिवाने भेजे और उन्होंने भी पहुंचकर आदरसे जिनदत्तकी सेवामें इसप्रकार निवेदन किया—

"हे सर्वोत्तम! आपके पिता आपके वियोगमें सूख सूखकर बिलकुल कांतिहीन होगये हैं। उन्हें आपकी यादमें खाना पीना तक नहीं सुहाता। आपकी माता तो आपके पास न होनेसे रात्रि दिन रोया ही करती हैं उनको गंडस्थली सर्वदा आंसुओंके प्रवाहसे भींजी और आंखोंमें आंजे गये कज्जलके बहनेसे काली ही रहती है और भी अन्य जो आपके कुटुंबी हैं वे भी सब आपकी विरहाग्निसे संतप्त हो दुःख पा रहे हैं एवं सबके सब आपके मुखचंद्रके देखनेकेलिये लालायित हो रहे हैं इसलिये आपके पिताजीने हमें आपकी सेवामें भेजा है कृपाकर शीघ्र ही चलिये और अपने संयोगसे सबको सुखी बनाइये।'

अपने पिताके पाससे बुलानेकेलिये आये हुये आदमियोंके संदेशको सुनकर जिनदत्तसे भी न रहा गया। उनका हृदय भी अपने मा बाप और कुटुंबियोंसे मिलनेकेलिये लालायित हो गया। उन्होंने शीघ्र ही अपने श्वसुरसे और राजासे अपने नगरकी ओर जानेकी सम्मति मांगी एवं उसके मिल-

जानेपर अपनी समस्त स्त्रियों और परिवारके साथ मनोहर विमानमें सवार हो वे ठाठ बाठके साथ चल दिये।

महासामंत जिनदत्त उत्साह और औत्सुक्यके साथ अपने नगरकी ओर रवाने होकर शीघ्र ही अपने पिताके पास जा पहुंचे। और पिताने भी बड़े भारी उत्सवके साथ चारो बहुओंके संग हर्षसहित इनका घरमें प्रवेश कराया।

इसप्रकार श्रीमान् भगवद्गुणभद्राचार्य-विरचित जिनदत्तके भाषानुवादमें सातवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ७ ॥

आठवां सर्ग।

उस समय होनेवाले समस्त मांगलिक चिन्होंसे भूषित गृहमें प्रवेशकर जिनदत्तने माताको प्रणाम किया और वह भी अपने चिरवियुक्त पुत्रको देखकर रोने लगी। माताकी यह दशा देख जिनदत्तने उसे अच्छी तरह धैर्य दे समझाया और उसके बाद क्रम क्रमसे अपनी वृद्धाओंको प्रणाम कर उनकी आशिषें ग्रहण करते भद्रासन पर बैठ गये। इसके बाद नगरकी तथा कुटुम्बकी स्त्रियोंने उनके ऊपर अक्षत बिखेरे और सैकडों गाजोंबाजोंके साथ मंगल गीत गाये। इसप्रकार जिनदत्तके जब मंगलाचार और आदर सत्कार हो चुके तो उनकी श्रीमती विमलमती आदि स्त्रियोंने भी अपने अपने क्रमसे अपनी वृद्धाओंके पैर आदि छूये और उन्होंने भी उनका यथायोग्य सत्कार किया।

जब समस्त घरका उत्सव समाप्त होगया तो जिनदत्त अ-

पनी प्रियतमाओंके साथ नगरके समस्त जिनमंदिरोंकी वंदनाके लिये गये और गुरुओंके चरणकमलोंमें भक्तिसे नमस्कार कर जब लौट आये तो दीन दरिद्रियोंको उनकी आवश्यकतानुसार यथेष्ट दान दिया। वसंतपुरके नृपति चंद्रशेखरने जब इनकी लोगोंके मुखसे प्रशंसा सुनी तो उसने भी इनका खूब आदर सत्कार किया जिससे कि राजसम्मान और प्रजासम्मान दोनोंके साथ स्वर्गमें देवोंके समान अपने नगरमें इंद्रियसुखों-को भोगते थे काल विताने लगे।

जिनदत्त आजकलकेसे धनाढ्य युवकोंके समान निरंतर इंद्रिय विषयोंके लोलुपी सर्वदा उसीके भोगनेमें अनुरक्त रहने-वाले न थे उन्हें अपने धर्म ध्यानका भी पूरा पूरा ख्याल था। वे जिसप्रकार भोगसामिग्रियोंके एकत्र करनेके लिये द्रव्य ख-र्चते थे उसीतरह बगीचे, बावडी आदिसे शोभित जिनमंदि-रोंके निर्माण करानेमें भी खूब धन लगाते थे, श्रावक, श्राविका अर्यिका और मुनियोंको उनकी अवस्थाके अनुकूल यथेष्ट चारो प्रकारका दान देते थे, विशेष विशेष पर्वके दिनोंमें अ-नेक श्रावकोंको साथमें ले जिनमंदिरोंमें जा जाकर भगवानका पूजन अभिषेक करते थे और तीर्थंकरोंके पंचकल्याणोंकी भू-मिमें जा जाकर चारण ऋद्धिधारी आदि मुनियोंके दर्शनकर उनसे धर्मोपदेश सुनते थे।

हमारे चरित्रनायकके इसतरह धार्मिक कृत्योंके करनेसे अन्य समस्त नगर निवासियोंपर बड़ा ही प्रभाव पडता था वे इनके धनाढ्य होनेपर प्रबल धार्मिक भावको देखकर खूब ही धर्म ध्यान करनेमें दृढ होजाते थे। धर्मके प्रभावसे जिनदत्तके

हाथी, घोडा, रथ, गाय, सोना, चांदी आदि सब प्रकारकी संपत्ति यथेष्ट होगई थी। जिसप्रकार समुद्रमें तरंगोंका पता नहीं लगता कि कितनी आईं और कितनी गईं उसीप्रकार जिनदत्तके संपत्तियोंकी गिनती न थी। पुत्र इनके पहिली स्त्री विमलमतिसे तो सुदत्त और जयदत्त थे, श्रीमतीसे वसंतलेखा पुत्री और सुप्रभ पुत्र था, विद्याधरपुत्री शृंगारमतीसे सुकेतु, जयकेतु, और गरुडकेतु तो पुत्र एवं विजयमती पुत्री उत्पन्न थी। तथा चौथी स्त्री [चंपानगरीके महाराजकी पुत्री] से सुमित्र, जयमित्र, वसुमित्र तो पुत्र एवं प्रभावती नामकी पुत्री थी। इस तरह कुल मिलाकर इनके नौ तो पुत्र थे और तीन पुत्रियां थीं एवं उन सबके यथायोग्य रीतिसे अपनी अवस्थानुसार ठाठ बाठसे जन्मोत्सव, नामकरण और विवाह आदि उत्सव कराये थे।

इसप्रकार धर्म, अर्थ और काम तीनोंको समान रीतिसे पालते हुये जिनदत्तका समय बीत रहा था कि एकदिन शृंगारतिलक नामक उद्यानसे मालीने वहां सब ऋतुओंके एक साथ फलफूल आये देख आश्चर्यमें मग्न हो आकर इनसे कहा-

"श्रेष्ठिन्! बडे ही आनंद और उत्सवकी बात है कि आज प्रातःकाल मति, श्रुति, अवधि और मनःपर्यय चार ज्ञानके धारक समाधिगुप्त नामके मुनिमहाराज हमारे शृंगारतिलक नामके बगीचेमें पधारे हैं और उनके प्रभावसे उनकी सेवा करनेकेलिये ही मानो वहां छहो ऋतु आ उपस्थित हो गईं हैं जो कि असमयमें ही समस्त वृक्ष फल फूलोंसे लदबदा गये हैं। महाराज! औरकी तो क्या बात? जडाशय [जलाशय जलके स्थान, मूर्ख] तालाब भी उनके आगमनकी खुशीमें

अपने कमलरूपी नेत्रोंको फाड फाडकर इधर उधर देख रहे हैं। शब्दकर गुंजारते हुये भ्रमर पुष्पोंकी सुगंधिके लोभसे इधर उधर घूम रहे है सो वे मुनिके भयसे रोकर भागते हुये पाप सरीखे मालूम पडते हैं। आम्रवृक्षोंके ऊपर नवीन मंजरीके आ जानेसे उसके भक्षण करनेसे मत्त हुई कोकिलायें जो शब्द करती हैं वे मुनिदर्शनकेलिये भव्योंको बुलाती सरीखीं मालूम पडती हैं। जो लतायें वंध्या थीं जिनपर कभी आजतक फल फूल न आये थे वे भी आज मुनिके माहात्म्यसे फल पुष्पोंसे व्याप्त दीख रही हैं। जिसप्रकार बडे भारी आनंदमें आकर स्त्रियां अपने हाव भाव अंगचालन आदि पूर्वक नृत्य करती हैं उसीप्रकार उस उद्यानकी लतायें भी मंद सुगंध पवनसे प्रेरित हो मुनिदर्शनके आनंदसे भरपूरके समान अपनी कुसमांजलिको विखेरकर उत्सव करतीं मालूम पडती हैं। देव ! इसप्रकार आश्चर्यको करनेवाली महिमाके धारक वे मुनिमहाराज अकेले नहीं हैं उनके साथ अन्य भी बहुतसे भिन्न २ ऋद्धियोंके धारक, धर्मकी जीती जागती मूर्तियोंके समान अनेक मुनि हैं जो कि समस्त पापोंके नाशक, स्वाध्याय और ध्यान कर्ममें सर्वदा संलग्न रहते हैं।"

इसप्रकार धनपालके मुखसे चार ज्ञानके धारक समाधिगुप्ति मुनि महाराजके आगमका वृत्तांत सुनकर जिनदत्तको अपार हर्ष हुआ और अपने आसनसे जिस दिशामें मुनि महाराज विराजमान थे उसीमें सात पैंड जाकर उन्हें भक्तिभावसे परोक्ष नमस्कार किया। इसके वाद अपने भाई बंधुओंके साथ साथ उससमयके योग्य वाहनमें सवार हो शृंगारतिलक वगीचेकी ओर मुनिदर्शनकेलिये चल दिये।

जिससमय उद्यान थोडी दूर रहगया तो हमारे चरितनायक और उनके साथी विनयसे नम्र हो अपनी अपनी सवारियोंसे उतरे और वहांसे पैदल ही जहांपर मुनिमहाराज थे पहुंचे। मुनिराज अशोक वृक्षकेनीचे एक निर्मल शिलातलपर विराजमान थे। उनके समीप पहुंचकर जिनदत्तने उनकी तीन प्रदक्षिणायें दीं, भक्तिभावसे स्तुति पढी और यथाक्रमसे अन्य मुनियोंको भी नमस्कारादिकर हाथ जोडे ही यथास्थानपर बैठ गये। जिनदत्त और उनके साथियोंको आया देख उनके नमस्कारादिकर चुकनेके बाद मुनि महाराजने भी उन्हें पुण्यांकुरके समान अपनी दांतोंकी किरणोंसे सभाको शुभ्र करते हुये धर्मवृद्धिका आशीर्वाद दिया। इसप्रकार जब समस्त परस्परका कर्तव्य हो चुका तो जिनदत्तने भक्तिभावसे नम्र होकर कहा—

"हे तीनों जगतोंके नाथ! हे सर्वश्रेष्ठ!! हे मुनिराज!!! आज मेरा बडा ही अहोभाग्य है जो आपके पवित्रदर्शन मुझे हो गये। अन्यथा मुझसरीखे मूढबुद्धि पापियोंको आपके शुभदर्शन कहां? महाराज! यह संसार मोहरूपी अंधकारसे सघन व्याप्त है इसको आप सरीखे महामना तपस्वियोंकी वचन किरणोंके प्रकाशसे ही पार किया जासक्ता है। यदि आप सरीखे सर्वथा मूढताके नाशक देदीप्यमान रत्नदीपक इस मोहपूर्ण संसारमें नहीं हों तो इसमें कुछ भी संदेह नहीं है कि समस्त ही प्राणी जन्म मरण रूप अंधे कुएमें गिरकर अपने अनंतज्ञान आदि प्राण गवां बैठें। इन्द्रियविषयोंके भोगनेकी लालसा रूप अग्निसे निरंतर जलनेवाले इस संसारमें आपसरीखे

सच्चे अमृत वर्षानेवाले मुनि मेघोंका भव्योंके पुण्यप्रतापसे ही उदय होता है। जो मनुष्य आपके पवित्र चरणकमलोंकी एकबार संगति पाकर भी संसारके वास्तविक स्वरूपको नहीं समझता वह मंदभाग्य मूढ रत्नोंके खजानेरूप समुद्रके पास जाकर भी रत्नोंको ग्रहण न कर शंखको ही ग्रहण करता है। हे देव! जिस जगह सूर्य और चंद्रमाकी तीक्ष्ण किरणें प्रविष्ट हो अंधकार दूरकर पदार्थ दिखा नहीं सकीं वहां भी आपका ज्ञानरूप चक्षु अपने प्रभावसे पदार्थ देखता है। इसलिये हे नाथ! संसार समुद्रके पार करानेवाली आपकी कृपाके द्वारा मैं अपने पूर्व भवका समस्त वृत्तांत सुनना चाहता हूं। हे योगींद्र! मैंने किस कर्मके द्वारा तो अपार संपत्ति पा सुख भोगा और किसके द्वारा विपत्तियां झेलीं। एवं किस तरह दूर दूर देशमें उत्पन्न होनेवाली इन चार स्त्रियोंका संगम हुआ?"

जिनदत्तके इस अपने पूर्व भवके वृत्तांतको जाननेकी इच्छावाले प्रश्नको सुनकर मुनिमहाराज बोले—

'हे महाभव्य! तुमने जो अपने पूर्वभव पूछे हैं वे ठीक हैं। परंतु इस अनादि अनंत चतुर्गतिरूप संसारमें कर्मोंके अधीन हो सुख सरीखे लगनेवाले वास्तविक दुःखोंको भोगते हुये प्राणियोंको अनंत काल बीत चुका है। उस गत समयमें जो मनुष्य तिर्यंच नारकी और देवोंके अनंत जन्म धारे हैं उनको केवली सर्वज्ञ भगवान् भी जानते तो हैं परंतु कह नहीं सके। इसलिये तुम्हारे पूर्वके अन्य भवोंको छोड़

कर इस जन्मसे पहिले जन्मको ही कहता हूं और उसी भवमें तुह्मारा कल्याण भी हुआ है। तुम सावधान हो मन लगाकर सुनो।

इसी जंबूद्वीपके वीच जो यह भरत क्षेत्र है उसमें अपनी शोभासे स्वर्गको भी लजानेवाला अवंति देश है। वहां पर भ्रमर गुणशालीधान्योंके केदारोंपर उनकी सुगंधिसे मस्त हो होकर जाते हैं सो ठीक ही है जिन लोगोंके दोनो पक्ष (मातृ पितृ कुल, पंख) मलिन (काले) हैं वे केदार-कौन लोग दारों-पर स्त्रियोंसे पराङ्मुख होते हैं। उस देशमें जगह जगह जलाशय--तालाव हैं और वे श्रीकृष्ण सरीखे मालूम पडते हैं क्योंकि जिस प्रकार श्रीकृष्ण चक्र--अस्त्र विशेषसे शोभित, राजहंसों--श्रेष्ठ राजाओंसे सेवित और पद्मा--लक्ष्मीसे आढ्य सहित हैं उसी प्रकार वे तालाव भी चक्र-चकवीसे शोभित, राजहंसोंसे सेवित, और पद्मोंसे सहित हैं। वहांकी प्रजा श्रेष्ठ कविकी कविताके समान गुणवाली है--जिसप्रकार कविकी कविता सरस-रसवती होती है उसी प्रकार प्रजा भी सरस आनंद भोगनेवाली है। जिस प्रकार कविता अलंकार-शब्दालंकार प्रभृति काव्यके अलंकारोंसे भूषित होती है उसीप्रकार वहांकी प्रजा भी श्रेष्ठ २ अलंकार भूषणोंसे सुशोभित है कविता जिसप्रकार व्यक्तवर्णव्यवस्थिति--वर्णोंकी स्पष्टतासे व्यक्त होती है उसी प्रकार वहांकी प्रजा भी वर्ण-ब्राह्मण क्षत्रिय आदि वर्णोंकी व्यक्त स्थितिसे सहित है और जिस प्रकार

कविता प्रसादौजोयुता--प्रसाद ओज आदि काव्यके गुणोंसे युक्त रहती है उसी प्रकार वहांकी प्रजा भी प्रसन्नता तेजस्विता आदि गुणोंसे सर्वदा युक्त रहती है।

इस प्रकारकी शोभासे शोभित उस अवंति देशमें उज्जयिनी नामकी एक नगरी है। उसके चारों ओर एक परकोट है और उसके चारों ओर एक खाई है जो कि परकोटकी शिखिरमें लगे हुये पद्मरागमणियोंकी किरणोंकी कांतिसे चकवा चकवियोंकी विरहव्यथाको सर्वदा हरण किया करती और सूर्यके उदय अनुदयकी उन (चकवा चकवियों) को कुछ भी चिंता नहीं करने देती। उस नगरीके प्रासादोंमें लगीं हुईं नील मणियोंकी कांतिसे शवल हुआ चंद्रमा सर्वदाही रात्रियोंमें स्वछंदचारिणीयोंके हर्षको करता रहता है। एवं वह नगरी ब्रह्मासे पुण्यात्मालोगोंके लिये समस्त संपत्तियोंकी जन्म भूमि सरीखी बनाई गई मालूम पड़ती है।

उस उज्जयिनी नगरीका एक छत्राधिपति विक्रमधर्म नामका राजा था जिसका कि समस्त संसारमें निर्मल यश विस्तृत था और जिसके प्रतापसें ही शत्रुलोगोंके वशीभूत हो जानेसे चतुरंगबल केवल शोभाके लिये ही था। उस विक्रमधर्म राजाके पद्मश्री नामकी सर्वस्त्रियोंके गुणोंसे भूषित परमसुंदरी पट्टरानी थी। इसी राजाके धर्मराज्यमें धनदेव नामका एक अतिधनाढ्य सेठ रहता था और उसके कुल एवं शीलसे पवित्र परम रूपवती, गृहस्थीके समस्त कार्योंमें सुचतुर

यशोमती नामकी स्त्री थी। ये सेठ सेठानी अपने पूर्वपुण्यके प्रभावसे मनमाने सांसारिक सुख भोगते थे। कुछ कालके बीतने पर उनके तुम पुत्र हुये और तुह्मारा पिताने अपने भाई बंधुओंके साथ उत्सव कर शिवदेव नाम रक्खा तुमने इससे पहिले जन्ममें घोर पाप किये थे इसलिये शिवदेवके भवमें वे उदयमें आये और उसीके कारण ज्यों ज्यों तुम बढने लगे त्यों त्यों कुटुंबियोंकी घटवारीके संग संग तुह्मारे पिताका धन भी घटने लगा। आखिर एक दिन ऐसा पाप का उदय आया कि बाजारकी सड़क पर आकाशसे टूटकर बिजली गिरी और उसके नीचे दबकर तुह्मारे पिता परलोक सिधार गये। तुह्मारे पिताकी मृत्यु होनेपर दुःखित हो कुटुंबियोंने उनकी दाह किया करदी और समय बीतने पर उन्हें भुला भी दिया परंतु तुह्मारी माताको बड़ाही कष्ट पहुंचा वह बिलख बिलख कर रोने लगी—

'हा नाथ! हा मुझ अभागिनीके प्राणाधार!! पतिदेव!!! तुम मुझे छोड़ कहां गये। यदि तुम्हें मेरी कुछ भी चिंता न थी तो इस नन्हें बाल चंद्रके समान सुंदर अपने इकलोते पुत्र की ही कुछ चिंता तो की होती। हा! अब मैं आपके विना इस संसारमें कैसे जीऊंगी! किस तरह इस नन्हे बालकको पाल पोषकर बड़ा कर सकूंगी? हा! मेरी समस्त ही आशायें मिट्टीमें मिल गईं। मैं किसी भी कामकी न रही। आपके बाद जो कुछ थोडी बहुत मेरी मदत कर-

ता यह धन भी तो आपके ही साथ चला गया। मैं बड़ी ही मंदभागिनी हूं। हे देव! अब कैसे मेरी जीवन यात्रा पूरी होगी।"

इसप्रकार नाना विलापोंको कर तुम्हारी माता किसी प्रकार कुटुंबियोंके समझाने बुझानेसे शांत हुई और अगत्या गृह कर्मोंको करती तुम्हें पाल पोषकर बढ़ाने लगी और तुम भी बहुत ही दुःखसे दीनता पूर्वक दिन दिन बढ़ने लगे। जब कुछ तुम बड़े हुये तो तुम्हारा तुम्हारी माताने किसी वैश्यकी कन्याके साथ विवाह कर दिया और तुम वणिज्या (वणिजी) के लिये दूसरे दूसरे गांवोंमें जा आकर कुछ द्रव्य उपार्जन कर लाने लगे एवं एक दिनकी वणिज्यासे तीन दिन तक अपने कुटुंबका भरण पोषण करने लगे।

एक दिनकी बात है कि तुम खूब सवेरे ही वणिजीके लिये दूसरे गांवको जा रहे थे कि रास्तेमें पीपल वृक्षके नीचे ध्यानारूढ एक मुनि महाराज तुम्हें दिखलाई पड़े। वे मुनि सामान्य मुनि न थे। तीनों काल-(प्रातः मध्याह्न और सायं समय) योग धारण करते थे, सर्व प्राणियोंके हितैषी थे, अपनी चिदानंद आत्माके ध्यानी, सांसारिक इच्छारहित, मानसे शून्य थे, कर्मोंके आस्रव और बंधके विध्वंस करनेमें लीन, मनोगुप्ति, वचोगुप्ति और कायगुप्तिके धारक, समितियोंसे देदीप्यमान, शांतस्वरूपी थे, मुरजबंध आदि व्रतोंके धारण करनेसे कृश शरीरवाले होकर भी पांच इंद्रिय, और प्रबल

मनकी दुष्टताको रोकनेमें यथेष्ट शक्तिवाले थे, महीने दो दो महीनेके उपवासकर संपूर्ण इंद्रियोंको रोक पर्यंकासन मांड अपनी आत्माके शुद्ध स्वरूपके चिंतनमें लवलीन हो जानेवाले थे और प्रत्यक्ष परोक्ष समस्त पदार्थोंके ज्ञाता थे। उनका पवित्र नाम मुनींद्र विमल था। उन्हें देखकर तुम्हारे हृदयमें स्वाभाविक भक्तिका स्रोत फूट उठा तुमने हर्षित हो अपनी वनिजीकी वकुन्चिगाको तो उतारकर एक ओर रखदिया और मुनिके पैरोंमें पड़ नमस्कार कर यह सोचा—

"आहा! संसारमें दो ही पुरुष धन्य हैं और वे ही वास्तवमें किसी प्रकार सुखी भी हैं। एक तो वे जो कि निष्कटंक एकछत्र पृथ्वीका राज्य करते हैं और दूसरे वे जो कि जितेंद्रिय तपस्वी हैं। अथवा तपस्वीके साथ चक्रवर्तीका साम्य मिलाना योग्य नहीं। तपस्वीकी अपेक्षा चक्रवर्तीको किंचिन्मात्र भी सुख नहीं है क्योंकि पहिला तो रागद्वेषसे रहित आत्मसुखभोजी है और दूसरा रागद्वेषके सर्वदा अधीन विनाशीक इन्द्रिय सुखका अनुभव करनेवाला है।"

इसप्रकार भक्तिभावसे नम्रीभूत हो तुम हररोज प्रातःकाल आनेकी मनमें इच्छाकर अपनी कार्यसिद्धिके लिये चले गये और प्रतिदिन उसीप्रकार आने जाने लगे।

कुछ दिनके बाद मुनि महाराजके योग समाप्त होनेका दिन आया और उपवासोंका अंत होनेसे पारणाका दिन

हुआ तो उससे पहिले ही तुमने अपने मनमें उनके गुणोंका ज्ञाता होनेसे यह विचारा कि—

"अहा ! ये अद्वितीय तपस्वी यतिदेव आज अपने पैरों· की धूलिसे किसके घरको पवित्र करेंगे । किस मनुष्यके भाग्यका सितारा इतना देदीप्यमान होगा जिसको ये कल्या· णका भाजन बनायेंगे । जिस मनुष्यके यहां ऐसे ऐसे उत्तम पात्र अपना आतिथ्य स्वीकार करते हैं उसके किसी भी ऐ· हिक और पारलौकिक सुखकी सामिग्रीकी त्रुटि नहीं रहती । वह अवश्य ही उत्तमसे उत्तम भोगोंका पात्र बन जाता है । इन मुनि सरीखे उत्कृष्ट पात्रोंको थोडेसे थोडा भी यदि निर्दोष भक्ति द्वारा दान दिया जाय तो संसारमे ऐसा कोई पदार्थ ही नहीं है जो इच्छा करने मात्रसे इस जन्मकी तो क्या बात पर जन्ममें भी प्राप्त न होजाय । जिसप्रकार सूर्यके उदय होने मात्रसे अंधकार विलीन हो जाता है उसीप्रकार ऐसे तपस्वी महात्माओंके दर्शन मात्रसे पापोंका समुदाय समूल नष्ट होजाता है फिर यदि दान आदिकी सहायतासे इनका संगम प्राप्तकर लिया जाय तो कहना ही क्या है ? जिसप्र· कार समुद्रमें लहरे उठती हैं और फिर विला जाती हैं उसी· प्रकार मुझ मंदभाग्यकी इच्छायें मनमें उठती हैं और विना· पूर्ण हुये ही विला जाती हैं । जिस मनुष्यका पुण्य नष्ट हो गया है अथवा है ही नहीं, उसके घरको तपस्वी मुनिराज अपने चरण कमलोंसे पवित्र नहीं करते सो ठीक ही है—विना

उत्कृष्ट पुण्यके कल्प वृक्षही कब किसके घर होते देखे या सुने गये हैं। जिसप्रकार चिंतामणि रत्न पापियोंको प्राप्त नहीं होता उसीप्रकार इन सरीखे मुनियोंको दान देनेका समागम भी विना उत्कृष्ट पुण्यके प्राप्त नही होता। यद्यपि ऊपर विचारी गई बातें सब ठीक हैं तथापि कौन कह सक्ता है कि उस पुण्यका उदय मेरे कब होजाय और है या नहीं, इस लिये मुझे उनके आगमनकी प्रतीक्षामें सावधान रहना चाहिये क्योंकि परिश्रमके करते रहनेसे ही मनुष्योंको विपुल फलकी प्राप्ति होती है।" इसप्रकार नाना तर्क वितर्कोंको करता हुआ वह वैश्य धोये हुये निर्मल धोती दुपट्टेको पहिन कर अपने घरके दरवाजेपर खडा होगया और उन महातपा मुनिराजके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगा।

मुनिराज पारणाके लिये नगरमें पधारे और अनेक ऊंचे नीचे उस नगरके महल मकानातोंको नंबर वार छोडते हुये उस वैश्यके पुण्य द्वारा प्रेरणा किये हुयेके समान उसीकी तरफ आने लगे। मुनिराजको अपनी तरफ आते देखकर शिवदेवने अपना बड़ा ही भाग्य समझा, जिसप्रकार दरिद्रको निधिकी प्राप्ति होनेसे अपार हर्ष होता है उसीप्रकार असीम हर्ष हुआ और देहधारी पुण्यके पुंजके समान उन्हें अपने घर आते देखा। घरके पास मुनिराजके आते ही शिवदेव उठा उनका पडिगाहन किया, और ऊंचे आसनपर विराजमानकर उनके चरणोंका प्रक्षालन अपने हाथों किया। इ-

सके बाद अष्ट प्रकारकी पूजा कर नवधा भक्तिसे आहार देने लगा इसी बीचमें सूरदेव, यशोदेव और नंददत्त वैश्योंकी पद्मावती जयश्री सुलेखा और मदनावली नामकी पुत्रियां सम्पूर्ण आभरणोंसे भूषित होकर साथमें हलुआ ले इसकी माताके घर आईं और सब एक जगह बैठ गईं। शिवदेवने उनके लाये हुये हलुयेमेंसे उन मुनिराजको कुछ दिया और उसके इस व्यवहारसे वे वैश्यपुत्रियें बहुत ही संतुष्ट हुईं उन्होंने सोचा कि-यह बुद्धिमान् धन्य है, इसके यद्यपि धन नहीं है, वणिजीसे अपना पेट भरता है तथापि धार्मिक कार्योंके करनेका उत्साह इसका बहुत ही प्रशंसनीय है। जिन महात्माके चरण कमलोंके दर्शनको बड़े २ राजे महाराजे तरसते हैं परंतु पा नहीं सकते उनके दर्शनकी तो क्या बात ? इसने उन्हें दान दिया है। अयि लक्ष्मी! क्या तू सचमुच ही अंधी है जो इस गुणशाली! सात्विक पुरुषको नहीं अपनाती, ! इसपर कृपा नहीं करती।

इसकी बराबर अन्य किसीका भी अवश्य ही पुण्य नहीं है नहीं क्या भला! ये सर्व साधारणको दुर्लभ त्रिलोकीनाथ इसके घर स्वयं आते!" इस प्रकार मनमें सोचविचार कर उन वणिक पुत्रियोंने उस पात्रदानकी खूबही अनुमोदना की और बार २ उस शिवदेवको तथा मुनिराजको भक्ति भरे नेत्रोंसे देखा। उस (शिवदेव) ने भी भक्तिरससे पूर्ण मन हो मुनिको आहार दान दिया परंतु माता कदाचित् आ-

कर कुछ विघ्न न करदे इस भयसे शंका बनी ही रही। आहार के मुनिराज तो वनकी तरफ विहार करगये और वह बनिया थोड़ी दूर उनके पिछार जाकर अपने घर लौट आया।

'भद्र! जो तुमने किया वह किसीसे नहीं होसका, तुम निश्चय ही समस्त संपत्तियोंके घर हो' इस प्रकार बार २ प्रशंसा करती हुई वे चारों वैश्यपुत्रियां अपने २ घर चली गईं। उसके बाद 'मैं प्रतिदिन मुनियोंको भोजन कराकर स्वयं भोजन करूंगा' इस अभिलाषासे वह प्रति दिन प्रतीक्षा करने लगा और क्रम क्रमसे काल बीतने पर उसकी मृत्यु हो गई। इसी प्रकार शिवदेवके साथ दानकी अनुमोदना करनेवाली चारों वणिक पुत्रियां भी अपने २ भाग्यानुसार सुख भोगती हुई मरणको प्राप्त हुईं॥

इस प्रकार श्रीमान् भगवद्गुणभद्राचार्यविरचित संस्कृत जिनदत्तचरित्र के छायाश्रित हिंदी अनुवादमें आठवां सर्ग समाप्त हुआ॥८॥

नौवां सर्ग।

इसके बाद शिवदेव मरकर दानके प्रभावसे तू जीवदेव शेठका पुत्र जिनदत्त हुआ। तुझे जो कुछ भी सुख प्राप्त हुये हैं वे सब इसी दानके माहात्म्यसे हुये हैं क्योंकि पात्रदानसे सबही सुख प्राप्त होते हैं। तेने पहिले भवमें पद्मावती आदि वैश्यपुत्रियोंके अनुरागमें अपने मनको लगाया था इसलिये अन्य स्त्रियोंमें तेरा अनुराग नहीं हो पाया। दान देते समय जो हृदयमें माताके आ जानेकी शंकासे संक्लिष्टता आगई थी उससे जो भक्तिमें न्यूनता होजानेसे पुण्यमें न्यूनता हो गई थी उसीसे ही बीचमें अनर्थोंकी परंपरा तुम्हें प्राप्त हुई इसके अंत होनेपर उत्कृष्ट संपत्तिके साथ २ अपने परिणामके अनुसार पूर्व भवकी चारो कन्यायें तुम्हारी स्त्रियां हुई जो कि चंपामें सिंहलद्वीपमें और रथनूपुरमें अच्छे २ घरानोंकी बेटियां होकर विमलमति श्रीमती शृंगारमती और विलासमतीके नामसे प्रसिद्ध हुई। उन्होंने तुम्हारे सिवा अन्य पुरुषके साथ विवाह करनेकी इच्छा न की इसलिये तुम्हारे ही साथ विवाही गई और इससमय पूर्वभवमें दिये गये दानके माहात्म्यसे संसारके नाना सुखोंका अनुभव कर रही हैं।

इसप्रकार जिनदत्तके पूर्वभवोंका समस्त वृत्तांत जब मुनिराज कह चुके तो जिनदत्त तथा उसकी स्त्रियोंको अपने पूर्व भवका समस्त वृत्तांत याद हो आया और उससे उन्हें मूर्छा आगई। यह देख लोगोंने इसका कारण पूछा। उत्तरमें

जिनदत्तने जो पहिले जन्मका वृत्तांत याद आया वह सब कह सुनाया इसके बाद वह मनमें सोचने लगा—

"ये मुनिराज मेरे परम उपकारी हैं। मैं इन्द्रिय विषयोंकी लालसामें मत्त हो उन्हींके तृप्तकरनेमें लग रहा था इन्होंने पहिले जन्मका समस्त वृत्तांत जतलाकर सचेत कर दिया। यद्यपि मैंने उससमय दारिद्र होनेके तथा अज्ञानी होनेके कारण कुछ विशेष धर्माचरण न किया तो भी मैं इससमय सब तरहसे संपत्तियोंकी कृपाका पात्र हूं। अहा! देखो! मैंने बहुत ही थोडासा दान पहिले भवमें सत्पात्रके लिये दिया था वह ही जिसप्रकार छोटा वटका बीज बडा वृक्ष होजाता है और अनेक शाखा प्रशाखाओंमें फलता है उसीप्रकार नाना संपत्तियोंके द्वारा फल रहा है। यदि उस ही अत्यल्प दानका इतना माहात्म्य है और संसारकी उत्तम संपत्तियोंका कारण हुआ है तो स्वर्ग मोक्षकी संपत्तियां अवश्य ही सुलभ रीतिसे प्राप्त हो जांयगी इसमें कोई संदेह नहीं है। लेकिन प्रमाद मद मात्सर्य मोह और अज्ञान आदि दुर्भावोंके वशीभूत हुये मूढ मनुष्य अपने स्वरूपको नहीं विचारते। वे यह नहीं सोचते कि संसारमें न तो उतना माता ही हित कर सक्ती है न पिता भाई बंधु और मित्र ही कर सकते हैं जितना कि निरीह साधु कर सकते हैं, जैनशास्त्रके अनुसार जो कुछ भी दान दिया जाता है उसीसे निसंदेह कृतकृत्यता प्राप्त होजाती है। इससमय मुझे प्रायः सब ही सामिग्री प्राप्त हैं इसलिये

बाहिरी हितको छोडकर मुझे भीतरी सच्चा हित करना चाहिये। मेरे पुण्यके प्रतापसे ही महामोहरूपी तीव्र अग्निको शांतकरनेकेलिये मेघके समान ये मुनिराज मुझे प्राप्त हुये हैं। अबतक आंधीके समान वेगसे दिनपर दिन बीतनेके कारण शीघ्र ही समीप आनेवाली वृद्धावस्था मेरी इस शरीररूपी झोपडीको गिराये नहीं देती है तब ही तक बल्कि उससे पहिले ही मुझे अपना हित कर डालना चाहिये और उसका यह समय युवावस्था होनेसे बहुत ही उपयुक्त है। इन महामुनिके उपदेशसे जो मैंने अपनी पूर्व जन्मकी दशा जानली है उससे चित्त भी स्थिर हो चुका है इसलिये इन ही महामुनिके चरण तलमें मुझे दीक्षा लेकर तप धारण करना चाहिये" इसप्रकार हृदयमें दृढ रीतिसे सोच समझकर जिनदत्तने मुनिराजसे निवेदन किया कि—

हे विना ही किसी कारणके संसारका हित करनेवाले नाथ! आपके प्रशादसे जो मैंने अपने पूर्व जन्मका वृत्तांत स्पष्ट जान लिया है उससे मेरा बडा ही हित हुआ है। जो फल देव और मनुष्योंसे पूजित कल्पवृक्षोंसे नहीं प्राप्त हो सक्ता, जो अभीष्ट पदार्थ देनेवाली गाय नहीं प्रसव करसक्ती और जो चिंता करनेमात्रसे प्रदान करनेवाला चिंतामणि रत्न नहीं देसक्ता वह ही हितदायी फल आपके चरणकमलोंके सेवन करनेसे प्राप्त होता है। जबतक मनुष्य आपके चरणोंका सहारा ले उनकी आज्ञानुसार नहीं प्रवृत्त होता तबतक

वह नेत्रोंसे सूझता होकर भी वास्तवमें अंधा है, संसारकी समस्त बातोंमें पंडित होकर ज्ञानरहित है। संसारमें न तो कोई पदार्थ ऐसा पैदा ही हुआ है और न पैदा ही होगा जो आपके ज्ञानमें हाथकी हथेली पर रक्खे हुये आमलेके समान स्पष्ट और प्रत्यक्ष न दीखता हो। नाथ! संसार रूपी गहन वनमें मार्ग न सूझनेसे नाना दुःख भोगते हुये इन प्राणियोंको सीधा और सच्चा मार्ग दिखानेवाले आप ही हैं आपके ही प्रसादसे लोग दुर्गतिके कठिनसे कठिन दुखोंसे रक्षा पाते हैं इसलिये हे त्रिलोकीनाथ! मुझे भी आप दीक्षादेकर संसार सागरके पार उतार दीजिये।"

जिनदत्तकी उपर्युक्त विनतिको सुनकर मुनिराज बोले कि 'हे भव्य! तैने जो कहा वह ठीक है पर कुछ वक्तव्य है उसे भी सुन। तुमसरीखे सुकुमार लोगोंको कठिन कठिन चर्यासे सिद्ध होनेवाला तप प्रशंसनीय ही है करने योग्य नहीं, क्योंकि जिनेंद्र भगवान् द्वारा कहे गये तपका आचरण करना बालूको कोरोंसे खाना है, अग्निकी ज्वालाको पीना है, हवाको गांठमें बांधना है, समुद्रका हाथोंसे तिरकर पार करना है, मेरु पर्वतको तोलना है, तलवारकी नोकपर चलना है और आकाशके पार पहुंचना है अर्थात् जिस प्रकार बालूका खाना आदि कार्य कठिन है उसीप्रकार जिनदीक्षाका धारणकर निर्वाह करना भी कठिन ही नहीं असंभवसरीखा है बल्कि यहां तक कहना चाहिये कि उपर्युक्त बालूखाना

आदि तो किसी प्रकार किये भी जासकते हैं परंतु जिनदीक्षाका पालना करना नहीं हो सकता क्योंकि उसमें सबतरहसे शरीरको असह्य कष्ट भोगने पड़ते हैं। जैनतप धारण करनेसे भूख प्यासकी बाधा सहनी होगी, जन्मभर सब समय सर्वथा वस्त्ररहित नग्न रहना पड़ेगा, मनरूपी मल्लका उत्कट वेग रोकना होगा और मनसे जिसका विचारना कठिन है वह महाव्रतका भार ढोना होगा। जिस प्रकार चारो तरफ सांकलोंसे बंधा हुआ मनुष्य अपने हाथ पैर किसी तरफ किसी तरह नहीं हिला डुला सकता उसीप्रकार समितियोंके वशीभूत हुआ जैनमुनि भी स्वछंदमन वचन कायकी प्रवृत्ति नहीं कर सकता जिन एक एक इंद्रियोंने भी अपनी प्रबलतासे संसारके लोगोंको वशकर पराधीन बना दिया है उन मन सहित पांचो इंद्रियोंको अपने वशमें करना होगा। भद्र! जैन दीक्षासे दीक्षित होकर अनियमसे चलना नहीं होता शास्त्रोक्त षडावश्यक अपने अपने समय पर करने पडते हैं। प्रमादको तिलांजुलि देदेनी होती है श्रद्धासे मन सर्वदा शुद्ध रखना होता है। फूलोंकी मालाके समान सुकोमल केशोंको हाथकी मुष्टियों द्वारा उपाडना पडता है। उस अवस्थामें कपडेकी तो क्या बात? रोम, वल्कल और पत्तों तकका आवरण निषिद्ध है जिसका कि सहना अत्यंत क्लेशकारी है। दीक्षालेनेकेबाद जन्मभर स्नान करना नहीं होता जिससे कि धूली आदि मलोंसे मलिन देह सर्वदा रखनी पडती है दंतधावन भी नहीं

करना होता और कंकड पत्थरमयी भूमिपर ही एक करवटसे सोना पडता है । शास्त्रोक्त विधिके अनुसार पाणिपात्रसे भोजन करना होता हैं और वह भी अंतराय टालकर एक दिनमें कभी २ एकवार और कभी २ कुछ भी नहीं। इस प्रकार जिन बातोंका उल्लेख किया गया है वे तो मूलगुण हैं इन- के सिवा त्रिकाल योग सेवा आदि उत्तर गुण भी बहु- तसे हैं जैसे कि भूख प्यासकी वाधा आदि वावीस परी- षह सहनी पडती हैं ध्यानका अभ्यास करना होता है और शास्त्रका पठन पाठन आदि अनेक नियम साधने होते हैं जिनको तुम सरीखे सुखपूर्वक अपना वालकपनसे अबतकका जीवन वितानेवाले कोमल शरीरी पाल नहीं सक्ते । तुम्हारे सरीखोंके लिये तो श्रीवीतराग जिनदेवकी पूजा, संपूर्ण प्राणि- योंकी अभिलाषाको तृप्त करनेवाला दान आदि शुभकर्म करते हुये गृहस्थ धर्म पालना ही यथेष्ट है वह ही तप तुम्हारे लिये पर्याप्त है और क्या वताया जाय ? क्योंकि गृहस्थ धर्मके धारण करनेसे भी परंपरा स्वर्ग मोक्षके सुख प्राप्त किये जासक्ते हैं । इसलिये तुम तत्त्वोंके भले प्रकार ज्ञाता होकर दान पूजामें रत होते हुये श्रावकोंके व्रत निरतीचार पालते रहो और उसीसे अ- पना यथाशक्ति हितकरो । ”

मुनिराज इस प्रकार कहकर जब चुप होगये तो जिनदत्तने नम्र होकर कुछ हसते हुये निवेदन किया—

हे निरीह हितकारक मुनिराज ! आप समस्त तत्त्वोंके ज्ञाता हैं, आप संसारके गुरु हैं आप ही कहिये कि क्या यह आपका उत्तर उचित है आप सर्वके ज्ञाता हैं इसलिये आपने जो मुझे समझाया है वह यद्यपि ठीक है। तपका धारण करना उतना ही कठिन है पर जिसको संसार सुखदायी समझता है वह भवस्थिति ज्यों ज्यों विचारी जाती है त्यों त्यों मुझे कष्टदायी प्रतीत होती है। देखिये ! जिनेंद्रभगवानने जो कुल गति बतलाई हैं वे नरक मनुष्य तिर्यंच और देवके भेदसे चारप्रकारकी हैं। नरकमें जो जीव रहते हैं उनके कष्टोंका क्या पूछना है ? वहां तीखे तीखे शस्त्र अस्त्रोंसे उनके शरीर निर्दयतापूर्वक काटे जाते हैं। एक दूसरेसे सदा झगड़ा ठाना करते हैं और अपना अपना वैर निकालते हैं, वहां जिसतरहकी दुर्गंध पवन वहती है जैसा शीत पडता है और जैसी उष्णता सताती है उससे सबका दिल दहल सकता है उस जगहके लोग सदा भूखे ही रहते हैं, एक दूसरेके शरीरको टुकडे २ कर निगल जानेकी इच्छा करते हैं उनके दांत, ओठ, कंठ, छाती, बगलें, मुंह, तालु और कांखे आदि समस्त अवयव वैतरणीके खारमय दुर्गंध घिनावने जलसे धोये जाते हैं जिससे कि वे गलगलकर गिरने लगते हैं। तलवारकी धारके समान पैने वृक्षके पत्ते उनके शरीरपर पडते हैं, कुत्ते कौये गीधड शृगाल सांप आदि हिंसक जहरीले जंतुओंके आकार परिणत हुये नारकी परस्परमें एक दूसरे

अपने अपने बैरीको निगल जानेकी चेष्टा करते हैं और शक्तिभर दुख पहुंचाना चाहते हैं। वहां कोई नारकी तो कोल्हूमें डालकर पीसे जाते हैं, कोई कुंभीपाक रसमें डुबोये जाते हैं कोई लोहेके भालोंसे छेदे जाते हैं और कोई कूट शाल्मली वृक्षपर चढाये उतारे जाते हैं। इसप्रकार नानातरहसे वहां के जीवोंको असह्य शारीरिक मानसिक और वाचनिक दुःख उठाने पडते हैं परंतु जबतक उनकी आयु रहती है तबतक उन्हें बलात्कार सहने ही पडते हैं। जिसतरह पारा अलहदा बूंद २ होकर भी फिर मिल जाता है उसीप्रकार नारकियोंका शरीर शस्त्रास्त्र आदि नाना कारणोंसे भिन्न २ हो जाता है तो भी फिर मिलकर पूर्ववत् ही हो जाता है और जिस-प्रकार तीव्र वेदना भोगनेपर मनुष्यादिकोंका शरीर छूट जाता है उसप्रकार उनका उससे पिंड नहीं छूटता अर्थात् जबतक आयु रहती है तबतक नहीं मरते। इसलिये वहां जीवोंको जो दुःख है उसका वर्णन नहीं हो सक्ता।

दूसरी तिर्यंचगति है, वहां एक तो परतंत्रतासे ही जीवन विताना पडता है दूसरे किसी पदार्थकी चाह होनेपर उसके प्राप्त होनेकी भरसक चेष्टा नहीं हो सक्ती। हेय उपादेयके ज्ञानका तो वहां बहुत ही कम प्रादुर्भाव है, इसलिये रातदिन जो तिर्यंच नाना दुःख उठाते हैं वह कहा जा नहीं सक्ता।

तीसरी मनुष्य गति है पहिले तो उसका मिलना ही दुर

जीवको महाकठिन है यदि नाना कुयोनियोंमें बहुत समयतक भ्रमणकर इस जीवको किसीप्रकार उसकी प्राप्ति भी हो जाय तो फिर अनार्य खंडोंमें जन्म ही प्रायः हो जाता है जहांपर कि जिनेंद्र भगवानके उपदिष्ट धर्मके सुननेका सौभाग्य होना स्वप्नमें भी दुर्लभ है। यदि आर्यखंडमें भी जन्म हो जाय तो सुजाति सुकुलमें जन्म होना कठिन है और यदि वहां भी हो जाय तो संपूर्ण शरीरका निरोगपना वा संपूर्णपना होना कठिन है। और यदि वह भी हो जाय तो लडकपन तो खेल कूद वेवकूफोंमें ही निकल जाता है, युवावस्था कामरूपी पिशाचके फंदेमें पडकर समाप्त हो जाती है और बुढापेमें समस्त इन्द्रियां शिथिल होजानेसे धर्म कर्म कुछ सध नहीं सकता इसके सिवा अनिष्टसंयोग, इष्टवियोग, दारिद्र रोगीपना आदि अनेक आपत्तियोंसे पद पद पर दुःख ही उठाना पडता है। इसतरह मनुष्योंको सर्वदा दुःख ही दुःख बना रहता है।

चौथी देवगति है। वहां यद्यपि शारीरिक दुःख नहीं हैं तौ भी जो मानसिक दुःख हैं वह अवर्णनीय हैं। स्वर्गमें देव अपनेसे अधिक संपदावाले अन्य देवोंको देखकर जला करते हैं। जिससमय उनकी आयु छह महीनेकी शेष रह जाती है उससमय उसकी अवधि मालूम हो जानेसे जो दुःख उन्हें भोगना पडता है वह नरककी वेदनासे किसी भी अंशमें कम नहीं होता इसलिये देव भी दुःख भोगनेमें नारकियोंसे किसीतरह कम नहीं होते।

इसलिये संसारमें न तो ऐसी कोई अवस्था है और न कोई समय है जहांपर कि प्राणियोंको दुःखरहित सुख ही सुख हो। इसलोकमें कोई न तो ऐसी जगह है जहां यह जीव अनंतोवार न पैदा हुआ हो, न कोई ऐसा दुःख है जो हजारों बार न भोगा गया हो। इसलिये हे जगत्पूज्य! अब मेरे ऊपर कृपाकर प्रसन्न हूजिये क्योंकि विवेकरूपी माणिक्य दीपकके प्राप्त होजानेपर प्रमाद करना ठीक नहीं है।

नाथ! आपने जो गृहस्थोंके धर्मको ही मेरेलिये उपादेय और पालनीय बतलाया है एवं उसीसे अभीष्टसिद्धि होजानेका धैर्य जो दिया है सो यदि सच है तो आपका जो यह तपमें श्रद्ध है वह व्यर्थ ही समझा जायगा इसलिये हे साधुश्रेष्ठ। इस क्षणभंगुर संसारमें सारभूत जिनेंद्रभगवान द्वारा उपदिष्ट जैनतपकी दीक्षा दे मुझे कृतार्थ कीजिये"

मुनिराजने सचमुच ही अंतरंगसे विरक्त हुये जिनदत्तके जब वे वाक्य सुने तो कहा-' हे भव्य! तुम्हारा कहना ठीक है। जैसी तुम्हारी इच्छा है उसीके अनुसार कार्य करो।"

मुनिराजकी आज्ञा पाकर जिनदत्तने अपने मित्र मतिकुंडलसे यथायोग्य अपने पुत्रोंको पद देनेको कहा। तदनुसार समस्त पुत्र बुलाये गये और प्रणाम कर पिता जिनदत्त के पास बैठगये। ज्येष्ठ पुत्रको लक्ष्यकर पिताने कहा—

प्रिय पुत्र! तुम्हारी बुद्धि उदार है। तुमको यह मालूम ही है कि पुत्रके समर्थ होजाने पर पिता अपना समस्त कुटु-

सबके पालन पोषणका भार उसपर रख वनमें जाकर तप तपता है। यह पूर्वसे चला आया क्रम है इसलिये तुम अब सब तरहसे समर्थ होगये हो, तुम्हे अपना सब भार सुपुर्द कर मैं तप तपना चाहता हूं, आशा है तुम इसे स्वीकार करोगे और अपनी गृहस्थीका कामकाज सब तरह ठीक २ चलाओगे। ये जो तुम्हारे छोटे भाई है उन्हे अपने ही समान मानकर आरामसे रखना। समस्त जो नौकर चाकर और कुटुम्बी जन हैं उन्हे राजी रखना उन्हे अपनेसे विरक्त न होने देना। संसारके चाहे और काम रह जांय पर धार्मिक कर्मों में कभी भी आलस न करना उनको नियत समयसे शास्त्रानुसार करते ही रहना।"

पिताकी यह आज्ञा सुन पुत्रने निवेदन कियाकि हे पूज्य! आपने जो कुछ मुझे आज्ञा दी है वह उचित नहीं है क्यों कि जो संपत् तुमने भोगी है वह मुझे माताके समान अग्राह्य है। पिता पुत्रको अच्छी हितकर सीख देता है ऐसी किंवदंती है पर आज वह आपने मोहरूपी अंधकारसे वेष्टित मार्ग मुझे बतलाकर विपरीत कर डाली। आपके अन्य भी बहुत से पुत्र हैं कृपाकर उनमेंसे किसीको यह पद दीजिये और मैं आपके समीप रहकर अपना हित सिद्ध करूंगा।"

जेष्ठ पुत्रका यह निवेदन सुन अन्य बंधु बांधवोंने उसे बहुत समझाया और तब कहीं पिताका पद उसने लेना स्वीकार किया। इसके बाद उसका अभिषेक किया गया

और देश कोष राज्य अलंकार आदि समस्त संपत्ति विधि अनुसार प्रदान कर दी गई। इसके सिवा अन्य अपने पुत्रोंको भी यथायोग्य पद दीया और बांधु बांधव नौकर चाकरोंको उनकी इच्छानुसार तृप्त किया जिनदत्तने अपनी स्त्रियोंसे भी उस समय कुछ कहना उचित समझा और वैराग्ययुक्त चित्तवाले उसने रागद्वेषकी भावनासे रहित होकर कहा—कांताओ! जबसे विवाह हुआ है तबसे लेकर आजतक जो मैंने तुम्हारे साथ रागसे, क्रोधसे, मानसे, मुग्धमनसे या और अन्य किसी कारणसे कड़ा व्यवहार किया हो उसे क्षमाकरो, मैने तुम्हारे समस्त अपराध क्षमा करदिये हैं।"

अपने पति जिनदत्तके उपर्युक्त वचन सुनकर उसकी स्त्रियोंने पैरोमें पड हाथ जोडकर कहा-" नाथ! हम लोगोंने वह सब क्षमाकर दिया है। आप भी हमारा सब अपराध क्षमाकर देनेकी कृपा करें।" इस प्रकार अपने समस्त संबंधियोंसे दीक्षा लेनेकी अनुमति प्राप्त कर स्थिर चित्तवाले उस जिनदत्तने अपने अनेक वैराग्यसे पवित्र हृदयवाले मित्रोंके साथ साथ साधुपदवीका आश्रयलिया पति जिनदत्तको दीक्षित देख उसकी स्त्रियां भी गेहवाससे विरक्त होगई, उनका चित्त विषय वासनाओंसे शांत होकर इंद्रियोंके निग्रहकरनेमें आसक्त होगया और तदनुसार जिनेंद्र भगवानके चरण कमलोंमें अनुरक्त हो आर्यिका होगई।

मुनि जिनदत्त निरतीचार तप तपने लगे। उन्होंने गुरुके समीप अंगपूर्वक प्रकीर्णक शास्त्र अच्छी तरह पढे और फिर पृथ्वीपर भ्रमणकर धर्मोपदेशरूपी मेघवर्षासे संसारके तप्त प्राणियोंको तृप्त किया।

संसाररूपी समुद्रसे पार कर देनेमें प्रधान कारण तीव्र-तपको निरतीचार पालते हुये मुनि जिनदत्त बहुतसे मुनियोंके संग सम्मेदाचल पर पधारे और वहां अपना अंतिम समय समझ कर समस्त दोषोंको नष्ट करनेवाली सल्लेखना धारण की। उस समय उन्होंने सारभूत चार आराधनाओंका आराधन किया और कठिन कठिन तपोंसे कृश हुये शरीरको छोड़ कर सम्यग्दर्शनरूपी रत्नसे सुशोभित वह जिनदत्तका जीव बड़े भारी सुखके खजानेरूप आठवें स्वर्गमें देवांगनाओंके मन रूपी माणिक्यको चुरानेवाला देव हुआ।

जिनदत्तके साथी अन्य मुनि भी अपने अपने परिणामोंके अनुसार आयुके अंत होनेपर समाधि धारणकर यथास्थान उत्पन्न हुये।

जिनदत्तकी स्त्रियां जिन्होंने आर्यिकाके व्रत धारण किये थे वे सारभूत नानाप्रकारके तपका आचरणकर उसी आठवें स्वर्गमें देवियां हुईं जहांपर कि जिनदत्तका जीव पहिलेसे ही उत्पन्न होचुका था। वे वहां अवधिज्ञानके बलसे एक दूसरे को अपने पहिले भवका संबंधी जान बहुत ही आनंदित हुये और जिन धर्मका यह सब प्रभाव देखकर उसीके आचरण

में चित्त लगाने लगे। वे यहां अन्य तपोंका अभाव होनेसे केवल जिनपूजा आदि ही भक्तिसे पूर्ण मन हो प्रतिदिन करने लगे।

इस प्रकार श्रीमदाचार्य भगवद् गुणभद्राचार्यविरचित
संस्कृत जिनदत्तचरित्रके भावानुवादमें
यह नवमां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ९ ॥

समाप्तश्चायं ग्रंथः ।